अभिनव भारती ग्रन्थमाला—६

आज़ादीके रोड़े

लेखक—

श्री राम मनोहर सिंह

[सहकारी सम्पादक—'विश्वमित्र']

सम्पादक—

हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक—

गिरिजाशङ्कर वर्मा

अभिनव भारती ग्रन्थमाला

१७१-ए, हरिसन रोड,

कलकत्ता

प्रथम बार

अगस्त, १९४१

२)

मुद्रक—

जैनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,

कलकत्ता

सम्पादकीय वक्तव्य

नामसे ही स्पष्ट है कि इस पुस्तकका विषय भारतवर्षकी आजादी या स्वाधीनता नहीं है बल्कि उसके प्राप्त करनेके मार्गमें जो बातें विघ्न-स्वरूप हैं उनकी आलोचना करना है। परन्तु आजादीके रोड़ोंका ज्ञान प्राप्त करनेके पहले आजादीका स्वरूप समझना निहायत जरूरी है। लेखक महोदयने शुरूमें भारतवर्षीय जनसमूह और उनके ऐतिहासिक सम्बन्धका संक्षेपमें विवेचन कर लिया है और इसके बाद ही उन्होंने भीतरी और बाहरी विघ्नोंके विवेचनमें मनोनिवेश किया है। स्वर्गीय कविगुरु रवीन्द्रनाथने बहुत दिन पूर्व भारतीय स्वाधीनताके आदर्शके सम्बन्धमें एक कविता लिखी थी। स्वाधीनताके इससे उत्तम और साधु आदर्शकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस कवितामें उन्होंने बतलाया है कि "(हे भगवन्) भारतको ऐसा स्वर्ग बना दो जहां लोगोंका चित्त भय शून्य हो, मस्तक ऊँचा उठा हो, ज्ञान उन्मुक्त हो, जहां घरकी चहारदीवारी दिन-रात अपने ही आंगनके नीचे पृथ्वीको टुकड़े कर क्षुद्र बनाकर न रखे, जहां वाक्य हृदयके झरनेसे उच्छ्वसित होते रहें, जहां कर्मधारा नाना प्रकारकी सफलताओंसे गुजरती हुई देश-विदेशमें और दिग्-दिगन्तमें बिना रोक-टोकके अविराम गतिसे बहती रहे, जहां तुच्छ आचारकी मरुभूमि विचारकी निर्मल धाराको ग्रास न कर लेवे और उसके पौरुषको सौ टुकड़ोंमें विछिन्न न कर दे; जहां समस्त कर्म, समस्त विचार और समस्त आनन्दके नेता तुम स्वयं बने रहो—हे पिता अपने निर्दय हाथोंसे निष्ठुर आघात करके तुम इस भारतवर्षमें ऐसा ही स्वर्ग जगा दो!"—

चित्त येथा भय शून्य, उच्च येथा शिर,
ज्ञान येथा मुक्त, येथा गृहेर प्राचीर
आपन प्राङ्गण तले दिवस शर्वरी
वसुधारे राखे नाइ खण्ड क्षुद्र करि,
येथा वाक्य हृदयेर उत्समुख हते
उच्छ्वसिया उठे, येथा निर्वारित स्रोते
देशे देशे दिशे दिशे कर्मधारा धाय
अजस्र सहस्रविध चरितार्थताय;
येथा तुच्छ आचारेर मरु बालुराशि
विचारेर स्रोतः पथे फेले नाइ ग्रासि,
पौरुषेरे करेनि शतधा; नित्य येथा
तुमि सर्व कर्म चिन्ता आनन्देर नेता,
निज हस्ते निर्दय आघात करि पितः।
भारतेरे सेइ स्वर्गे कर जागरित॥

अगर विचार करके देखा जाय तो भारतवर्षमें इस प्रकारकी स्वाधीनता ले आनेके पहले हमें बहुत कुछ झाड़ पोंछ कर फेंक देना होगा। बहुत-सा बाह्याचारका जंजाल और अकारण करोड़ोंके चित्तको भीत बनानेवाली और मस्तकको नीची करनेवाली व्यवस्थाको जड़से उखाड़ फेंकना होगा, उन सारी दीवारोंको ढहाकर बरबाद कर देना होगा जिन्होंने हमारे चित्तको संकीर्ण और अपारदर्शी बना रखा है, और सबके ऊपर हृदयसे विश्वास करना होगा कि सचमुच ही परमपिता हमारे समस्त कर्मों, समग्र विचारों और सम्पूर्ण आनन्दोंका सार है। जिस दिन हम यह सब करनेमें समर्थ होंगे उस दिन हमारी

स्वाधीनता स्वयं आ जायगी। हम जब विधाताके निष्ठुर आघातोंका अर्थ समझने लगेंगे तो विदेशी शासनके अपमान और साम्प्रदायिक वैमनस्यके आघात वरदान मालूम होंगे। अपनी स्वाधीनताके मार्गमें हमने स्वयं दुर्लंघ्य प्राचीरें खड़ी कर रखी हैं। हमारे भीतर दोष है, रंध्र है और देशी विदेशी शासकोंने यदि उस रंध्रका फायदा उठाया है तो अन्याय चाहे हो पर अस्वाभाविक नहीं है।

पाठक देखेंगे कि इस पुस्तकके लेखक अपनी कमजोरियोंके प्रति उदासीन नहीं हैं। उन्होंने एक-एक करके उनकी परीक्षा की है। इस पुस्तकका प्रधान प्रतिपाद्य हिन्दू-मुसलमानोंका द्वंद्व है। लेखकने इनकी प्रकृतिका विश्लेषण किया है और इस प्रकार आजादीके रोड़ों-का असली आगमन-मार्ग पहचाननेका प्रयत्न किया है। असली समस्या यही है। यद्यपि विदेशी सरकारके सामयिक मनोभावोंका विश्लेषण करनेमें लेखकने अधिक परिश्रम किया है और उनके दोषों-को दिखानेके लिये बहुत-से प्रमाण संग्रह किये हैं पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि मूल समस्या हमारी अपनी बनाई हुई है। विदेशी सरकार सुयोग पाकर उसे पुष्ट कर रही है। शायद स्वदेशी सरकार होती तो वह उसे मिटानेकी कोशिश करती। परन्तु विदेशी सरकार-को जितना भी दोष क्यों न दिया जाय वह एक नैतिक प्रतिवादके सिवा और कुछ नहीं है। हमारे लिये प्रधान विचार्य है कि हम अपनी ही रची हुई फंदोंमें अधिकाधिक उलझते जा रहे हैं। हिन्दुओंकी वर्जनशील प्रकृतिके साथ मुसलमानोंकी ग्रहणशील प्रकृतिके सामं-जस्यकी हमने जितनी भी चेष्टा की है उतनी ही वह अधिकाधिक स्पष्ट और विकट होती गई है। समस्याका समाधान बाहरकी ओर

नहीं है, भीतरकी ओर हैं। पर बाहरकी ओर सदा टकराते रहनेसे हमारी सर्जनात्मक बुद्धि भी भोथी होती जारही है। स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर महाशयने इसीलिये एक बार कहा था कि—"अपनी शत्रुता बुद्धिको दिन-रात केवल बाहरकी ओर तत्पर रखकर उत्तेजनाकी अग्निमें अपनी समस्त संचित शक्तिकी आहुति मत दो। अपनी इन तनी हुई भवों वाले मुखमण्डलको उधरसे हटा ले आओ। आषाढ़के महीनेमें आकाशका मेघ जिस प्रकार धारासार वृष्टिसे ताप-शुष्क तृषातुर मिट्टी पर उतर आता है उसी प्रकार देशकी समस्त जातियों और सर्व मानवके बीच उतर आओ। नाना पकारकी सर्वतोमुखी मंगलचेष्टाके बड़े जालसे सारे स्वदेशको बांध डालो, कर्मक्षेत्रको सर्वत्र फैला दो। उसे इतना उदार और इतना विस्तीर्ण कर दो कि देशके ऊँच-नीच, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी उस विशाल कर्मक्षेत्रमें समवेत होकर हृदयके साथ हृदयको, कार्यके साथ कार्यको सम्मिलित कर सकें।" देशके सभी विचारशील महापुरुष यही कह रहे हैं और महात्मा गांधी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर इसी ओर लगनेका इशारा करते हैं।

परन्तु परमपिताका विधान इतना सहज नहीं है। भारतवर्षने हजारों पुश्त तक लाखों नर-नारियोंको अकारण नीच समझा है, अब भी उसका मोह दूर नहीं हुआ है,—यह महान् पाप एक रवीन्द्रनाथ और एक महात्मा गांधीके प्रायश्चितोंसे धुलता नहीं दिखता। तपस्याकी अग्नि जलती है और दूसरी ओरसे कूटनीतिकी बाढ़ उसे धो-पोंछकर ले भागती है। हमारे एक प्रयत्नके जवाबमें विधाताके दस प्रयत्न तैयार हैं। यही सबूत है कि पाप बड़ा है, उसका प्रायश्चित भी बड़ा

होना चाहिये। बहुत बलिदानोंसे सिद्धि मिलेगी। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें कथा है कि एक ब्राह्मणने गायत्री देवीकी सिद्धिके लिये अमोघ यज्ञ किया पर वह निष्फल गया। ब्राह्मणने इक्कीस बार असफल यज्ञ किये। अन्तमें जब निराश हो चला तो गायत्री देवी आविर्भूत हुईं। बोलीं, वह देखो तुम्हारे इक्कीस पापोंकी इक्कीस चितायें जल रही हैं। तुम्हें अन्तिम सफलता नहीं मिली थी क्योंकि तुम्हारे पाप क्षय नहीं हुए थे, पर देख लो कोई भी यज्ञ विफल नहीं गया। भारतीय स्वाधीनताकी देवी भी कुछ अन्तिम पापक्षयकी प्रतीक्षा-सी कर रही हैं। साधु प्रयत्न व्यर्थ नहीं गये हैं। वे और भी होने चाहिये। तभी कविका स्वप्न सफल होगा और भारतवर्षमें वह स्वर्ग जाग्रत होगा जिसकी चर्चा की जा चुकी है।

इस पुस्तकके पाठकको मालूम होगा कि स्वाधीनताके अग्निकुण्ड-को बुझा ले जानेके लिये कितने विघ्न हैं—भीतरके और बाहरके। विद्वान लेखकने कोई बात बिना प्रमाणके नहीं कही है और आशा है कि पाठक इसे पढ़नेके बाद अपनी कमजोरियोंको अधिक ध्यानसे विचार करेंगे और ठंढे दिलसे सोच सकेंगे कि उन्हें क्या करना चाहिये।

पुस्तकमें प्रूफ-रीडिंगकी कुछ अवांछनीय भूलें मिलेंगी जिसके लिये मैं अपनी ओरसे क्षमा प्रार्थी हूं। पाठकोंकी सुविधाके लिये अन्तमें शुद्धि-पत्र जोड़ दिया गया है।

हिन्दीभवन, शान्तिनिकेतन
१६-८-४१

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रस्तावना

वर्तमान हिन्दुस्तान राष्ट्रीय चेतना और साम्प्रदायिक-कलह—दो आपसमें टकरानेवाली और परस्पर विरोधी भावनाओंका अखाड़ा हो रहा है। एक ओर तो वे प्रगतिशील ताकतें हैं जो देशको आर्थिक एवं राजनीतिक गुलामीसे छुटकारा दिलाने और सर्वोतमुखी राष्ट्रीय उन्नति करनेके लिये दुनियाके एक महान शक्तिशाली शासनसे अहिंसात्मक संघर्ष करनेमें व्यस्त हैं और दूसरी ओर वे प्रगतिविरोधी शक्तियां हैं जो तथाकथित धार्मिक अधिकारोंके नामपर संकुचित साम्प्रदायिक विद्वेषकी आगलगाने और आपसमें सिर-फुटौल करानेपर उतारू हैं। बदनसीब हिन्दुस्तानकी तरफ दुनियाकी आजाद कौमें नफरतके साथ देखतीं और आंख फेर लेती हैं। दरअसल में भारत आज सिर्फ दो ही दल हैं—पहला प्रगतिशील और दूसरा प्रगतिविरोधी। ये कई अवांछनीय जुजोंमें बिखरे हुए हैं और दिखावेके लिये अलग-अलग नामसे अपने मकसदको पूरा करनेमें लगे हुए हैं।

प्रस्तुत पुस्तकमें आमतौरपर उन सारी अड़चनोंका जिक्र मिलेगा जो हमारे स्वातंत्र्य-संग्राममें बाधाएं डाल रही हैं—हमारी आजादीकी राहमें रोड़े अटका रही हैं। किन्तु पुस्तकमें खासतौरसे साम्प्रदायिक मसलेपर और उससे उत्पन्न होनेवाली अन्य समस्याओंपर ही यथासम्भव सविस्तार विचार किया गया है; बहुमत और अल्पमतकी पेचीदगियां दिखायी गयी हैं। कहीं-कहीं इसके ऐतिहासिक पहलूका भी उल्लेख किया गया है। भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनसे दिलचस्पी रखनेवाले अनेक विदेशी विचारकोंका भी यही मत है कि भारतीय स्वाधीनताके मार्गमें साम्प्रदायिक झगड़ेका झंझा-वात ही सबसे बड़ी एवं विनाशकारी बाधा है। मेरी रायमें साम्प्रदायिक एकताको सुदृढ़ बनानेका उद्देश्य महज एक दलका दूसरे दलके प्रति उदारता

दिखानेसे ही हासिल न होगा। अब यह व्यापक प्रश्न तो शीघ्रताके साथ स्थायी तौरपर तभी हल होगा जब उदारता, औचित्य एवं न्यायमें समन्वय होगा।

बंगालमें 'सविनय कानून भंग-आन्दोलन' के दिनोंमें और उसके बाद भी हिन्दू और मुस्लिम जनसमूहके निकट सम्पर्कमें जानेका मुझे मौका मिला। बंगालकी कई जेलोंमें रहकर भी हिन्दुओं और मुसलमानोंकी मनोवैज्ञानिक अवस्था और कांग्रेसके हिन्दू तथा मुसलमान कार्यकर्ताओंके धार्मिक एवं सामाजिक संस्कारोंका अध्ययन करनेका भी मुझे सुअवसर मिला था। इन्हीं दिनों मैंने यह महसूस किया कि साधारण कोटिके राष्ट्रीय कार्यकर्ताओंमें अभी वह सौजन्य और सद्भावना नहीं पैदा हुई है जो राष्ट्रीयताको व्यापक तथा शक्तिशाली बनानेके लिये अपरिहार्य है।

सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलन और सन् २४ के भयंकर साम्प्रदायिक दंगे, सन् ३० का पूर्ण स्वाधीनताके लिये चलाया गया भद्र अवज्ञा आन्दोलन और सन् ३१ में दंगोंकी श्रृङ्खला, सन् ३२ का सत्याग्रह और सन् ३४ में मजहबी जोशका ताण्डव और आज सन् ४१ की राष्ट्रीय चेतना तथा जगह-जगह दंगोंसे होनेवाले नरमेध, बरबस हमें सोचनेके लिये मजबूर कर देते हैं कि क्या हमारे हिन्दुस्तानके स्वाधीनता-संग्राम तथा साम्प्रदायिक दंगोंमें कोई घनिष्ठता है? हिन्दू और मुसलमान एक जमानेसे पास पास, निकट पड़ोसीकी तरह रहते आये हैं। मगर उन्नीसवीं शताब्दी तक ऐसे किसी नरमेधका प्रमाण नहीं मिलता, जैसे इधर आयेदिन धर्म और मजहबके नामपर हुआ करते हैं। अंग्रेज इतिहासकारोंने जहां औरंगजेबके जुल्मोंका जिक्र किया है वहां साम्प्रदायिक दंगोंकी कहीं चर्चा भी नहीं की। लेकिन बीसवीं सदीमें सभ्य कही जानेवाली जातियोंके निकट सम्पर्कमें आनेके बाद हम 'असभ्यों' का दुर्भाग्य कि कुछ सीख न सके और बकौल मि० एमरी—'हमें अंग्रेजोंका शुक्रगुजार होना चाहिये जिन्होंने हमारे देशमें ऐसी शांति और व्यवस्था कायम की?'

हिन्दुओं और मुसलमानोंको लड़ानेवाले अधिकतर धनिकवर्ग और मध्यवर्गके लोग ही हैं। अगर इन वर्गोंके नीचे उतरके देखा जाय उन किसानों और मजदूरोंकी ओर, जहां रोटियोंकी हाय-हाय मची रहती है, जिन्हें रोज कुआं खोदकर पानी निकालना पड़ता है तो वहां हमें साम्प्रदायिक कलहके जहरीले बीज देखनेको नहीं मिलते। किसान और मजदूर, चाहे हिन्दू हों अथवा मुसलमान, उसकी समस्याएं और कठिनाइयां एक-सी हैं। उसके ऊपर कर्जका बोझ है, चाहे वह काबुलीका कर्ज हो या किसी सेठका। इनकी समस्याएं साम्प्रदायिकतासे कोसों दूर-सर्वथा आर्थिक हैं। ऊपरके वर्गोंकी समस्याएं भी आर्थिक और राजनीतिक ही हैं लेकिन उनकी सिद्धिके लिये साम्प्रदायिकताका आवरण डाला जाता है।

यह पुस्तक इन्हीं सारी हलचलों और दर्दीले दृश्योंको देखकर और उनसे प्रभावित एवं प्रेरित होकर लिखी गयी है। जहांतक मुझसे हो सका है, मैंने पक्षपात-शून्य होकर इसे लिखनेकी भरसक चेष्टा की है और तदनुकूल आवश्यक अवतरण भी दिये हैं। लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूं कि राजनीतिक आन्दोलन और स्वाधीनताके संघर्षमय युगमें पक्षपात-शून्य होनेका दावा करना कोरी हिमाकत और प्रवंचना है। हिन्दुस्तानके और कई छोटे-बड़े राजनीतिक दलोंके मुकाबले, जो विशुद्ध राजनीतिक होनेका दावा नहीं कर सकते, सबसे बड़े और प्रभावशाली राजनीतिक संगठन कांग्रेसका मैंने जोरदार समर्थन किया है। मेरा दृष्टिकोण सर्वथा औचित्यपूर्ण है, यह मैं नहीं कहता। आलोचनाएं मुझे अभीष्ट हैं लेकिन उन्हें रचनात्मक होना चाहिये, ध्वंसात्मक नहीं। पुस्तकमें प्रकट किये गये विचार कुछ लोगोंको पसन्द आयेंगे और कुछ लोगोंको नापसन्द। लेकिन मैं बड़े अदबके साथ अर्ज करूंगा कि अपनी नापसन्दगीके बावजूद भी आप इसे पढ़ तो जरूर जायं और फिर लेखककी गलतियोंपर अपनी कोमल-कठोर, जैसी भी हो, निष्पक्ष राय जाहिर करें। सच कहता हूं, मुझे इससे बेहद खुशी होगी।

हिन्दीमें इस तरहकी, राजनीतिक विषयोंपर लिखी गयीं पुस्तकोंका

अभाव-सा है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक इस दिशामें कुछ पुर्ति कर सकेगी। दयालु पाठकोंने यदि इसे अपनाया तो आगे चलकर शायद मैं और कुछ लिखनेकी चेष्टा करूं। इसे लिखनेमें अनेक पुस्तकों तथा हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू और बंगलाके मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रोंसे भी सहायता ली गई है। अतएव, इनके लेखकों और प्रकाशकोंका भी मैं शुक्र-गुजार हूं।

'विश्वमित्र' कार्यालय,
नोबल-चेम्बर्स फोर्ट, बम्बई
१२, अगस्त-४१

विनम्र—
राम मनोहर सिंह

पूज्य बाबू जी

स्वर्गीय ठाकुर भगवान बख्शसिंह को

जिनकी अब केवल धुंधली

स्मृति ही शेष रह

गयी है।

—मनोहर

विषय-सूची

आज़ादीके रोड़े

१

प्रबल जीवन-शक्ति

भारतवर्षका इतिहास, अगर सच कहा जाय तो, निरन्तर होनेवाले विदेशी आक्रमणोंका तूफानी-इतिहास है। आज जो जाति भारतवर्षको अपनी मातृ-भूमि, पितृभूमि और धर्मभूमि कहनेका दावा करती है, यानी आर्य जाति—वह भी तो भारतवर्षमें बाहरसेही आकर आबाद हुई है और यहांकी आदिम जाति कोल-भिल्लों तथा द्रविणोंको पराजित कर, उन पर अपनी सांस्कृतिक-प्रभुता स्थापित कर उनके अस्तित्वको मिटा दिया है। आर्योंके पहले इस देशमें बसने वाली आदिम जातिकी सभ्यता एवं संस्कृति आज अंधकारमें लुप्त है। आर्योंने उस जातिको अपनेमें इस तरह मिला लिया है कि आर्योंसे भिन्न उनका अपना कोई अलग अस्तित्व नहीं रह गया है। कुछ इतिहासकारोंका कहना है कि आर्यजाति हिन्दुस्तानमें ईस्वी सन्से दो हजार वर्ष पूर्व आई थी।

किन्तु मोहेन-जो-दड़ो तथा हरप्पाकी खुदाइयोंसे यह प्रमाणित होता है कि ईस्वी सनसे ३२५० वर्ष पहले भी भारतवर्षमें एक सभ्य जाति आबाद थी और कला-कौशलकी दृष्टिसे वह काफी उन्नतिशील थी। आर्योंके बाद हूणों, शकों, यूनानियों, मुसलमानों और यूरोपियनोंके आक्रमण, जल एवं थल मार्गसे हिन्दुस्तान पर हुए और बीच-बीचमें और भी अनेक छोटे-मोटे हमले इस देशपर निरन्तर होते ही रहे। इसीलिये तो हम भारतवर्षके इतिहासको शृङ्खलाबद्ध आक्रमणोंका इतिहास कहते हैं।

भारतवर्षकी भौगोलिक एवं सामाजिक नवीनताएं सर्वथा स्पष्ट हैं। यदि ये नवीनताएं न होतीं तो इस देशका इतिहास भी इतना तूफानी न हुआ होता। हिन्दुस्तान शायद कभी भी एक संघबद्ध राजनीतिक राष्ट्र नहीं रहा। हिन्दुओंकी राष्ट्रीय एकताका आधार हमेशासे ही धर्म रहा है। राजनीतिक राष्ट्रीयताका विकास होना तो अभी हालसे आरम्भ हुआ है, खासतौरसे यूरोपियनोंके निकट सम्पर्कमें आनेसे। लेकिन आज भी हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीयताकी नब्ज राजनीतिकी अपेक्षा धर्ममें ही अधिक गतिशील पाई जाती है। हिन्दू जनसमूहने तो राजनीतिमें कभी विशेष दिलचस्पी ली ही नहीं। किन्तु हरेक हिन्दू बच्चेको संस्कृतका यह अमर वाक्य आज भी याद है कि—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी!" यानी माता और मातृभूमि स्वर्गसे भी अधिक श्रेष्ठ है। २० सौ मील लम्बे और १९ सौ मील चौड़े, इतने बड़े विस्तृत देशमें हिन्दुओंकी सार्वभौमिकता और उनके कतिपय विचारों एवं आदर्शोंके विस्तारको देखकर विदेशियोंको उलझनमें पड़ जाना पड़ता है। हिन्दुस्तान विद्यामें शायद संसारके सब देशोंसे पिछड़ा हुआ है और इस देशकी ८० फीसदी जनता शहरोंमें नहीं, बल्कि देहातोंमें आबाद है। आधुनिक यातायातके साधनोंका अभाव भी कम नहीं है। फिर भी पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तसे लेकर

आसाम तक और हिमालयसे लेकर कुमारी अन्तरीप तक हिन्दुओंके धार्मिक आदर्शोंमें बहुत-सी समानतायें पायी जाती हैं। यही हिन्दुओंकी धार्मिक राष्ट्रीयता (Religious Nationalism) है जो बड़े-बड़े प्रचण्ड उल्कापातों और तूफानोंके बावजूद भी अक्षुण्ण है।

राजनीतिक राष्ट्रीयताका जामा तो हिन्दुस्तान अब पहन रहा है और इसे एक शक्तिशाली राजनीतिक राष्ट्र बनानेकी प्रबल चेष्टायें की जा रही हैं; जिसके मार्गमें संकीर्ण साम्प्रदायिकता पहाड़ बनकर खड़ी है। सांस्कृतिक एकताके होते हुए भी हिन्दुस्तान सदैव टुकड़ोंमें बंटा रहा और यही कारण है कि विदेशी आक्रमणकारियोंके मार्गको कभी संगठित होकर रोका नहीं गया। अगर ऐश्वर्यलोलुप आक्रमणकारियोंका मुकाबला इस देशके लोगोंने संगठित होकर किया होता तो इस देशकी तवारीख कुछ दूसरे ही ढंगसे लिखी गई होती। लेकिन हिन्दुओंमें जहां विदेशी हमलेका संघबद्ध होकर विरोध करनेका दुःखद अभाव रहा है, वहीं उनकी एक अपनी विशेषता भी रही है—उपेक्षा। विदेशियोंने भौतिक भारत पर शासन किया, अपनी राज-सत्ता कायम की; मगर आध्यात्मिक भारतवर्ष पर शासन करनेमें वे कभी भी सफल नहीं हुए। विदेशियोंके प्रति भारतवासियोंकी उपेक्षापूर्ण दृढ़ताने सदा उनका साथ दिया। विजेता आये और तलवारके बल पर शासन करने लगे। वे न्यूनाधिक समय तक भारतवासियों पर राजनीतिक शासन करते रहे। परन्तु यह एक अचरजकी बात है कि उनका शासन कभी सतहके नीचे तक नहीं पहुंचा; भारतीयोंकी पुख्ता संस्कृतिमें वे कभी कोई मौलिक परिवर्तन नहीं कर सके। अकबर जैसे एक-दो शासकोंने हिन्दुस्तानकी सभ्यता एवं संस्कृतिमें बुनियादी तबदीली करनेकी कोशिश भी की, मगर वे कामयाब नहीं हुए। यूनानी आये और लूट तथा कत्लआम करके वापस चले गये। हूण

और शक आये और यहींपर बस गये और आर्योंने उन्हें अपना लिया। भारतवर्षकी आत्मापर उनका बहुत कम असर पड़ा। अरबके रेगिस्तानसे उठे हुए इस्लामके जिरा प्रचण्ड बवण्डरने मिस्र, फारस, टर्की और अफरीका तथा यूरोपके कुछ हिस्सोंको एकही चोटमें सोलह आने जीत लिया और वहांके लोगोंसे अपना सिक्का तथा रुतबा मनवा लिया वही इस्लाम भारतवर्षपर लगभग आठ सदियोंतक शासन करके भी, उसे चार आनेसे अधिक प्रभावित न कर सका। भारतवासियोंकी इसी जीवन शक्तिको अनुलक्ष करके लार्ड मेस्टनने 'नेशनहूड फार इण्डिया' नामक अपनी पुस्तकमें लिखा है—"× × × the ordeal of the continued Muslim invasion was such as probably no other religion in the world but Hinduism would have survived." अर्थात्—"सिलसिलेवार मुस्लिम आक्रमणकी अग्नि-परीक्षामें हिन्दू-धर्मके सिवा शायद संसारका और कोई दूसरा धर्म अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता था।"

मुसलमानोंने काफी लम्बे अर्से तक हिन्दुस्तानपर हुकूमत की मगर भारतवासियोंका धर्म, उनका ठोस सामाजिक सङ्गठन, वेषभूषा और रस्म-रिवाज वही रहा। उसमें कोई उल्लेखनीय फर्क नहीं आया। जातिका बाहरी लिबास तो बदल गया, इसमें शक नहीं मगर उसकी रूहानी पोशाकमें कोई भारी रद्दोबदल नहीं हुआ। यही वजह है कि विजेता आये और चले गये किन्तु भारतवासी उसी अवस्थामें जीवित रहे और जब थोड़ा-सा मौका मिला, ऊपरी दबाव कुछ हलका हुआ तो उनके शाश्वत जागरणमें देर न लगी। इस देशके लोगोंमें कुछ ऐसी हठीली जीवन-शक्ति है कि वह कुसमयकी चोटों, झंझावातके प्रचण्ड झोंकों और नैतिक ज़ुल्मके थपेड़ोंको सदियोंतक बर्दाश्त करके भी जिन्दा रहती आई है—कभी मरी नहीं। 'Eternal vigilance is the price of

liberty.' यानी 'शाश्वत जागरण स्वतन्त्रताका मूल्य है।' अगर यह दुनियाकी किसी जातिके लिये सच है तो वह हिन्दुस्तानकी हिन्दू जाति है। भारतवासियोंकी इस प्रबल जीवन-शक्तिको देखकर ही एक विदेशी कवि कहा उठा था :—

"The East bowed low before the West—
In patient deep disdain ;
She let the legions thunder past—
And plunged into thought again !"

"पूरब यानी भारतवर्ष, विदेशसे आये हुए तूफानके सामने नतमस्तक हो जाता है ; किन्तु उसके मस्तक झुकानेमें धैर्य एवं गहरी उपेक्षाका भाव सन्नि-हित रहता है। तूफानी लश्कर सिर परसे गुजर जाती है और वह फिर अपने ध्यानमें लीन हो जाता है।"

जो देश लगभग एक हजार वर्षके आक्रमणों और विदेशी हुकूमतोंके बाद भी अपने पुराने रूपमें फिरसे जागृत हो सकता है उसमें कोई विशेष जीवन-शक्ति अवश्य होनी चाहिये। जिस देशकी आत्मा—स्पिरिट—इतने विक-राल आघातोंको सहकर भी मरी नहीं उसमें कोई खासियत जरूर है। तभी तो महाकवि इकबालने बड़े नाजके साथ गाया है कि—'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़मां हमारा।' भारतने आज जागरणकी करवट ली है और सिर उठाया है तो फिर उसी पुराने ठाटमें, वही सादगी और वही भारतीयता—बिलकुल बेजोड़। न तो इस्लामकी तलवार ही भारतकी आत्माको कुचल सकी और न ईसाइयतकी कूटनीति ही इसे रौंद सकी। आज हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतिके मेलसे, पश्चिमी पोशाक पहनकर जो एक नयी राष्ट्रीयता पैदा हो रही है वह तलवार और प्रचारका

असर नहीं है। वह भारतका एक ऐतिहासिक एवं स्वाभाविक विकास है।

इतने प्रचण्ड आक्रमणोंके बाद, अगर कोई दूसरी संस्कृति हुई होती तो उसका आज कहीं पता न चलता। 'यूनान, मिस्र, रोमां सब मिट गये जहांसे ; लेकिन अभी है बाकी नामोनिशां हमारा !' भारतीय संस्कृतिमें यह खूबी है कि वह झुकती तो जल्द है मगर टूटती नहीं। एक लचीली (Elastic) वस्तुकी तरह—ठीक रबरके मानिन्द, ऊपरी बोझसे और खींचातानीसे वह दब तो जाती है, संकुचित हो जाती है और कभी फैल भी जाती है मगर दबाव हटते ही वह अपने मौलिक रूपमें आ जाती है। जो भी विदेशी हिन्दुस्तानमें आये उन्हें बड़ी कोमल किन्तु कराल संस्कृतिसे वास्ता पड़ा। हिन्दू संस्कृतिका मूल सिद्धान्त है—'जिओ और जीवित रहने दो।'

२

हिन्दू और मुसलमान

इस बातपर तो संसारके सभी इतिहासकार एक मत हैं कि हिन्दुस्तानमें सर्व प्रथम हिन्दू जाति आई और उसने देशका अपना वतन बनाया। हिन्दू अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं फिलासफीके लिये सारे संसारमें बहुत पहलेसे ही प्रसिद्ध हैं। अंग्रेजीमें तो यह एक कहावत-सी हो गयी है कि—'जहां पश्चिमी तत्वज्ञानका अन्त हो जाता है वहांसे पूरबी तत्वज्ञानकी शुरूआत होती है।' हिन्दुस्तानकी सभ्यता एवं संस्कृति तथा हिन्दुओंकी उदारता, सहनशीलता एवं उनके बौद्धिक विकास (Intellectual development) की तो उन प्राचीन यात्रियोंने मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है जिन्हें पुराने जमानेमें, जो भारतका सुनहला युग था, इस देशका भ्रमण करनेका अवसर मिला था। यूआन चांग नामक महान चीनी यात्रीने लिखा है कि:—"हिन्दुस्तान ऐसे पवित्र एवं ज्ञान-सम्पन्न आदमियोंका देश है जो लोगोंको अच्छीसे अच्छी शिक्षा देकर उनके अज्ञानान्धकारको दूर करते हैं। जिस तरह चांद बिना किसी भेदभावके संसारको अपनी स्निग्ध-ज्योत्स्ना प्रदान करता है उसी तरह भारतके विद्वान समूचे विश्वके लोगोंको शिक्षा देनेके लिये तत्पर रहते हैं।

इसीलिये तो भारतवर्षको 'इन्दु' कहा जाता है। हिन्दुस्तानको चांद इसलिये कहा जाता है कि वह दुनियाके दूसरे देशोंसे कहीं अधिक महान और विशिष्ट है। जिस तरह रात्रिके समय नीलाकाशके प्रशस्त अंचलपर हीरकखण्डसे जगमगाते हुए नक्षत्रोंमें चन्द्रमा सबसे बड़ा नक्षत्र जान पड़ता है उसी तरह भारतवर्ष भी संसारके अनेक देशोंमें सबसे महान है।" अतएव, यह सिद्ध है कि हिन्दुस्तान चन्द्रमाकी तरह स्निग्ध एवं शांत देश है अथवा कभी रहा है।

इब्नउलकिफ्तीने हिन्दुस्तानकी बाबत अबू मशहर नामक अरबके एक मशहूर आलिमकी राय उद्धृतकी है जो ८८५ में हिन्दुस्तानकी यात्रा करने आये थे। अबू मशहरने यहांसे वापस जानेपर यह मत प्रकट किया था कि—"हिन्दुस्तानके राजे फिलासफर होते हैं, क्योंकि विज्ञानसे वे बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। दुनियाके तमाम देश हिन्दुस्तानियोंको ज्ञानका पोषक, न्यायका स्रोत और नेकीका नमूना समझते हैं। लेकिन हिन्दुस्तान चूंकि हमारे देशसे बहुत दूर है इसलिये हिन्दुस्तानियोंकी बाबत हमारी जानकारी बहुत मुख्तसर है।"

हिन्दू बड़े धर्मभीरु होते हैं और उनकी धार्मिकता जग जाहिर है। जो उनके धर्मको छेड़ता है उससे वे नफरत करते हैं। लेकिन हिन्दू धर्मकी उदारता उसकी सबसे बड़ी खूबी है। अपने धार्मिक मामलोंमें छेड़-छाड़ करनेवालोंकी ज्यादतीको भी वे बर्दाश्त कर लेते हैं किन्तु उपेक्षाजनित भावसे। हिन्दुओंके यद्यपि अनेक देवता और अनेक धर्मशास्त्र हैं मगर किसी देवताकी पूजा किये बिना और किसी धर्मशास्त्रको माने बिना भी एक हिन्दू, हिन्दू रह सकता है। हिन्दू धर्मकी गोदमें आस्तिक और नास्तिकके लिये समान अधिकार एवं समान स्थान प्राप्त है। हिन्दू धर्म मूर्तिपूजामें भी विश्वास करता है और नहीं भी करता। हिन्दू धर्म ईश्वरकी एकता और अनेकता दोनों मानता है।

पूर्णताको प्राप्त हो जानेपर हिन्दू धर्मके अनुसार ईश्वर और आत्मामें कोई अन्तर नहीं रह जाता। दोनों मिलकर एक हो जाते हैं अद्वैत।

अब हम मुसलमानोंके इस्लाम धर्मपर आते हैं। जो लोग इस्लामको बल प्रयोगका सबसे बड़ा हिमायती कहते हैं वे गलती करते हैं। इस्लाम शान्तिका उपासक है। इस्लामके शाब्दिक अर्थ हैं—(१) शान्ति (२) शान्ति प्राप्त करनेका पथ प्रदर्शक और (३) अधीनता। यह 'अधीनता' शब्द किसी व्यक्ति विशेषकी अधीनता स्वीकार करनेका द्योतक नहीं है बल्कि इस अधीनताका अर्थ है—ईश्वरकी इच्छाके सामने आत्म-समर्पण कर देना और उसके रूबरू अपनी हस्तीको मिटा देना। इस्लाम अपने अनुयायियोंको सबक देता है कि वह शान्तिसे रहें और सबसे मुहब्बत करें। शरियतके अनुसार मुसलमानोंके लिये ऐसी चन्द हिदायतें हैं जिनका पालन करना मुसलमानके लिये लाजिमी है। इस्लामके पांच स्तम्भ हैं (१) अल्लाहमें और उसके रसूल पैगम्बर मोहम्मदमें यकीन करना (२) नमाज पढ़ना (३) रोजा रखना (४) गरीबों और अपाहिजोंको दान देना तथा (५) हज करना। इस्लामके हरेक अनुयायीको इसका पालन करना अनिवार्य है।

जो लोग यह कहते हैं कि इस्लाम गैरमुसलमानोंके साथ दया दिखाना जानता ही नहीं और मुसलमानोंके सिवा सबको जानी तलवारके घाट उतार देता है उन्हें हजरत अबू बकरकी इन नसीहतोंपर गौर करना चाहिये। सीरियापर आक्रमण करते समय अपने लड़के ओसामाको हजरत अबू बकरने यह नसीहत दी थी कि—"जङ्गके मैदानमें जब तुम अपने दुश्मनोंका मुकाबला करना तो अपनेको सच्चा और वफादार मुसलमान साबित करनेसे न चूकना। अगर खुदा तुम्हें फतह हासिल करे तो उस फतहयाबीका नाजायज फायदा न उठाना। जो लोग शिकस्त खाकर तुम्हारे सामने झुक जायं उनका खून तेरी तल-

बारमें न लगने पाये। अपने दुश्मनोंके बच्चों, औरतों और बूढ़ोंको छूना तक नहीं; उनपर रहम करना। दुश्मनकी जमीनसे कूच करते समय खजूर और अन्य फल देनेवाले दरख्तोंको काटना नहीं, जमीनकी पैदावारको बर्बाद न करना, आबादी को फूंकना नहीं और दुश्मनके भण्डारोंसे उतना ही सामान लेना जितनेकी तुम्हें जरूरत हो। आवश्यकतासे अधिक बर्बादी न होने पाये। जो लोग कैद हो जायं या तुम्हारी शरणमें आ जायं उनके साथ दया दिखाना, जिस तरह कि तुम अल्लाकी दया व दुआ चाहते हो। दुश्मनके साथकी जानेवाली सन्धियों और शर्तोंमें कोई दगा, फरेब या मक्कारी न करना। तुम्हारा आचरण और तुम्हारी शर्तें बिलकुल साफ हों। अपने अहदपर हमेशा कायम रहना। साधु, संन्यासी, तपस्वी और वैरागीको कभी परेशान न करना—उनके घरों और पूजा-पाठ करनेकी जगहोंको नष्ट न करना।"

ऊपरकी नसीहतोंसे साफ जाहिर है कि इस्लाम बेगुनाहोंपर जुल्म ढानेकी सलाह नहीं देता। इस्लामकी तलवार हमेशा उसीके खिलाफ उठी है जिसने उससे टक्कर लिया है। हजरत मोहम्मदने अपने सिपहसालार खलीदको कहा था कि—'औरतों और मजदूरोंको कभी न मारना।' लेकिन तवारीखके पन्ने इस बातके गवाह हैं कि इस्लामकी इन सारी हिदायतोंके बावजूद भी दूसरे देशों और दूसरी जातियोंपर मुस्लिम सिपहसालारों और विजेताओंने कैसे-कैसे जुल्म ढाये हैं और किस प्रकार गैरमुसलमानोंको काफिर कह कर उनके खूनसे अपनी तलवारोंकी प्यास बुझायी है—उनके रक्तसे अपना हाथ रंगा है। मगर यह बात केवल मुसलमान विजेताओंके सम्बन्धमें ही सच नहीं है, संसारके सभी देशों एवं मजहबोंके विजेताओंने विजितोंपर अत्याचार किये हैं। हिन्दू जाति और ईसाई जातिके इतिहासमें भी ऐसे उदाहरणोंकी कमी नहीं है। सिर्फ रंग बदल दिया गया है। किसी जातिने मजहबके नामपर रक्तपात किया

है, किसीने राज्य विस्तार और ऐश्वर्यलिप्साके नामपर खूनकी होली खेली है।

दुनियाके सभी धर्मोंके बुनियादी उसूल प्रायः एक-से हैं। प्रत्येक धर्मके मौलिक सिद्धान्तोंमें समानता पाई जाती है। लेकिन उसूलोंको अमली जामा पहनाना आसान नहीं है। संसारकी विजयोन्मत्त जातियोंने अपनी जातिके धार्मिक उसूलोंको ठुकरा कर ही आक्रमण किया है और धरातलको अपने तथा दूसरेके रक्तसे लाल कर दिया है और फिर इन आक्रमणोंको धर्म, मजहब तथा आदर्शका जामा पहनाकर पाक-साफ बननेका दावा भी किया गया है। धर्म और मजहबके नाम पर संसारमें अनेक लड़ाई-झगड़े, रक्तपात और हत्याकाण्ड किये गये हैं और आज भी किये जा रहे हैं। संसारका वायुमण्डल झूठे धर्म और मजहबके कुत्सित पचड़ोंसे अगर मुक्त होता तो समाजका दृश्य ही कुछ और हुआ होता। मुसलमानोंने धर्मके नाम पर अनेक युद्ध किये हैं, इसमें शक नहीं। मगर इसी धर्म और सम्प्रदायके नाम पर हिन्दुस्तानमें, विदेशी आक्रमणोंके पूर्व, शैव, वैष्णव, बौद्ध और ब्राह्मणोंमें जो रोमाञ्चकारी हत्याकाण्ड हुए हैं उन्हें भी तो भुलाया नहीं जा सकता। यदि हम इतिहासके पन्नों पर नजर डालें तो हमें पता चलेगा कि जो यूरोप और अमेरिका आज अपनेको सभ्य कहनेका दम भरते हैं और हिन्दुस्तानमें आये दिन होनेवाले साम्प्रदायिक दंगोंके कारण हिन्दुस्तानियोंको आजादीके अयोग्य करार देते हैं उनके ही देशोंमें धर्म और मजहबके नाम पर कितने भीषण नरसंहार हुए हैं। यहां हम सिर्फ एक इङ्गलैण्डका उदाहरण देंगे। सन् १५५५ ई० में, जबकि इङ्गलैण्ड पर मेरीका शासन था, उस समय टेम्स नदीके निर्मल जलके स्थान पर रक्तकी अवधि धारा प्रवाहित हो चली थी। मेरी 'कैथोलिक' थी—वह ईसाई धर्मके पुराने उसूलों और आदर्शोंको माननेवाली थी; इसलिये परिवर्तनवादी 'प्रोटेस्टेण्टों' को धर्मद्रोही समझती थी। बस फिर क्या था।

लूथर, राजसे, फेरार, क्रेनमर, वैटियर तथा रिडले आदि जितने भी देशके प्रमुख प्रोटेस्टेण्ट महात्मा थे; उन्हें मेरीने धधकती हुई अग्निमें घास-फूसकी तरह झोंकवा दिया। वे निर्दोष, निरपराध महात्मा भभकती हुई लपट-लपटोंमें-जलकर राख होगये ; मेरी खड़ी मुस्कुराती रही। मजहबकी रक्षा करनेवाली महारानी मेरीके इन अत्याचारोंके कारण इंगलैण्डमें तीसवर्षीय और शतवर्षीय युद्ध हुए थे और निरन्तर सौ वर्षोंतक इंगलैण्डमें तलवारें चमकती रही थीं।

हिन्दुस्तान पर मुसलमानोंका पहला आक्रमण मोहम्मद बिन कासिमने ७११ ई० में सिंध पर किया। उसने मजहबका जोश देकर अपनी पल्टन तैयार की थी और उसका मकसद हिन्दुस्तानमें लूट-पाट करना था। मुस्लिम सौदागरों और यात्रियोंकी जबानी वह भारतके धन-वैभवका किस्सा सुन चुका था। उसने ब्राह्मणोंको, जिन्हें हिन्दुओंमें धर्मगुरुका पद प्राप्त है, कत्ल किया और मंदिरों तथा देवालयोंको तोड़कर उनमें आग लगा दी। इसके बाद महमूद गजनी, मुहम्मद गोरी और जितने भी अन्य आक्रमणकारी हिन्दुस्तानमें आये सबोंने मनचाही लूट-पाटकी तथा हिन्दुओंके धार्मिक स्थानोंको नष्ट-भ्रष्ट किया। इन मुस्लिम आक्रमणकारियोंका उद्देश्य हिन्दुस्तानमें बसकर शासन करना नहीं था। इनका उद्देश्य तो लूट-पाट करना और मालामाल होकर लौट जाना था। अलाउद्दीन खिलजी शायद पहला मुसलमान था, जिसने समूचे हिन्दुस्तान पर विजय पानेका अभियान आरंभ किया। उसने दक्षिण भारतपर हमला किया। इसके बाद तुगलक राजवंशका शासन कायम हुआ और फिरोजशाहने हिन्दुओंको मुसलमान बनानेका जोरदार प्रयास किया। उसने यह फरमान निकाला कि जो हिन्दू इस्लाम-धर्म कबूल करेगा उसे जजिया करसे मुक्त कर दिया जायगा। अभी तक ब्राह्मणोंसे जजिया कर नहीं लिया जाता था। फिरोजशाहने ब्राह्मणों पर भी जजिया लगा दिया और ऐसा करने में

उसका यह विश्वास काम कर रहा था कि चूंकि हिन्दूधर्मकी कुञ्जी ब्राह्मणोंके हाथोंमें है इसलिये ब्राह्मणों पर अगर दबाव पड़ेगा तो इस्लामके विस्तारमें आसानी होगी। १५२६ में मुगल साम्राज्यकी नींव पड़ी और अकबरने उसे शक्तिशाली बनाया। अकबरकी नीति हिन्दुओंसे मिल-जुलकर शासन करनेकी रही। उसने व्यक्तिगत धार्मिक मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं किया। उसकी यह नीति बड़ी कारगर साबित हुई। उसमें धार्मिक सहिष्णुता थी और वह सब धर्मोंका आदर करता था। उसके पुत्र जहांगीर और पोते शाहजहांने भी अकबरकी ही नीति अख्तियार की और उनका शासनकाल अपेक्षाकृत अमन-चैनसे बीता। मगर औरङ्गजेबने, जो अपनी धार्मिक कट्टरता और हठधर्मी (Bigotry) के लिये मशहूर था, मुगल साम्राज्यकी पुख्ता नींवको हिला दिया और उसकी हिन्दू विरोधी नीतिके कारण ही मुगल साम्राज्यका क्षय हो गया। उसने अपने दुराचरण और धार्मिक उन्मादसे हिन्दुओंको क्षुब्ध कर दिया। शिवाजीने हिन्दू विद्रोहका झण्डा उठाया और औरङ्गजेबको परेशान कर दिया। शिवाजीने हिन्दुओंमें मुस्लिम शासनके खिलाफ एक नया जागरण पैदा किया और दक्षिण भारतमें मराठा राज्यतक कायम कर दिया। मुगल साम्राज्य ध्वंस हो चला।

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि—थोड़ेसे मुसलमानोंने इतने बड़े देशपर हमला करके किस तरह विजय प्राप्त कर ली? उत्तर स्पष्ट है। भारतीय समाज अनेक टुकड़ोंमें विभक्त था। संगठन और सहयोगका अभाव था। छोटे-छोटे हिन्दू राजे आपसमें डाह और ईर्ष्याकी ज्वालामें जल-भुन रहे थे। उधर संघबद्ध आक्रमणकारियोंमें यह जोश भरा गया था कि वे काफिरोंपर हमला कर रहे हैं जो कि उनका धर्म है। इस धार्मिक उन्मादसे उन्हें और भी बल मिला। संक्षेपमें उनकी विजयका यही रहस्य है।

३

अलगावकी भावना

हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी जनसंख्या लगभग नौ करोड़ है। संसारके किसी भी एक देशमें मुसलमानोंकी संख्या इतनी नहीं है जितनी अकेले हिन्दुस्तानमें है। टर्की, अरब और फारसमें मिलाकर जितने मुसलमान बसते हैं उससे अकेले बंगालमें उनकी संख्या ज्यादा है। यद्यपि हिन्दुस्तानके प्रत्येक भागमें मुसलमान आबाद हैं मगर पंजाब, बंगाल, सिंध और सीमाप्रान्तमें वे बहुसंख्यामें हैं। भारतीय रियासतोंमें हिन्दुओंकी संख्या अधिक है। किन्तु यह एक बड़ी दिलचस्प बात है कि काश्मीर, जो कि एक मुस्लिम प्रधान रियासत है वहांका शासक हिन्दू है और निजाम हैदराबादका शासक मुसलमान हैं, जबकि वहां हिन्दू बहुसंख्यामें हैं।

सामाजिक दृष्टिसे हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच बड़ी चौड़ी खाईं है। दोनों जातियोंकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बिलकुल भिन्न है। बहुत लम्बे अर्से तक हिन्दुओं तथा मुसलमानोंका अपना स्वतन्त्र इतिहास रहा है—ऐसा ज्वलंत इतिहास जिस पर दोनों कौमोंको स्वाभाविक गर्व है। हिन्दुस्तानके धरातल पर दोनों जातियां मिलीं और दोनोंने अपने इतिहासकी परिभाषा

अलग-अलग दृष्टिकोणसे की। ऐतिहासिक समन्वयकी चेष्टा कभी नहीं की गई। दोनों जातियोंके साम्प्रदायिक नेताओं एवं विचारकोंने, दोनों जातियोंके मेलसे भारतीय राष्ट्रीयताका भवन निर्माण करनेकी कोशिश भी कभी नहीं की। दोनों जातियोंको हमेशा अलग रखा गया जिससे पड़ोसी होते हुए भी बन्धुत्वकी भावनाका विकास नहीं हो पाया। शहरों और कस्बोंमें रहनेवाले हिन्दू तथा मुसलमान अपने अलग मुहल्ले बनाकर रहते हैं। कामकाजके समय बाजारों, सड़कों और कारखानोंमें दोनों जातियोंके लोग मिलकर काम तो करते हैं मगर छुट्टीके समय अपने-अपने मुहल्लोंको लौट जाते हैं, जहां वे एक तरहकी ऐसी राहत महसूस करते हैं जैसे गैरोंके सम्पर्कसे हटकर अपने आदमियोंके बीच पहुंच गये हों। इस प्रश्न पर 'पोलिटिकल इण्डिया' नामक पुस्तकमें सर थियोडोर मोरीसनने लिखा है कि:—

"The Hindus and Muslims who inhabit one village, one town, or even one district belong to two separate nations, more distinct and farther asunder than two European nations. France and Germany are to Europeans, the standard example of enemy nations, and yet a young Frenchman may go to Germany for business or study, he may take up his residence with a German family, share their meals and go with them to the same place of worship. × × × No Muslim can live on such terms in a Hindu family."

अर्थात्—'हिन्दू और मुसलमान, जो एक गांव या एक शहर या एक जिलेमें आबाद होते हैं—उनमें दो यूरोपियन देशोंके लोगोंकी अपेक्षा अधिक अलगाव होता है और आत्मिक या मानसिक दृष्टिसे तो वे एक दूसरेसे बहुत दूर होते हैं। यूरोपियनोंके लिये फ्रांस और जर्मनीका रुतबा दो शत्रु देशोंका-सा

है । फिर भी एक तरुण फ्रेंचमेन कारोबार अथवा अध्ययनके लिये जर्मनी जा सकता है, एक जर्मन परिवारके साथ रह सकता, खानपानमें उनके साथ शामिल हो सकता और उनके साथ एक ही पूजापाठके स्थानपर जाकर पूजा-पाठ कर सकता है । मगर एक मुसलमान किसी एक हिन्दू परिवारके साथ इस तरह नहीं रह सकता ।' सर मोरीसनकी इन बातोंमें, हमें मानना पड़ता है, सचाईका काफी अंश है । लेकिन इसकी एक वजह भी है । प्रायः समस्त यूरोपियन देशोंका धर्म और उनकी संस्कृति एक है । राजनीतिक मतभेदोंके होते हुए भी उनमें धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता पायी जाती है । उन लोगोंमें रोटी-बेटीका सम्बन्ध है । लेकिन एक हब्शी या मुसलमान या जापानी अथवा हिन्दूके साथ यूरोपके लोग उतनीही एकता एवं आजादीके साथ नहीं रह सकते जिस तरह एक फ्रेंच-तरुण एक जर्मन परिवारमें जाकर रहता और खाता-पीता है । यूरोपवालोंमें रंगभेदकी बीमारी कम नहीं है । अमेरिका-में हब्शियोंकी जो दुर्गति की जाती है वह किसीसे छिपी नहीं है और यूरोप-में यहूदियोंके साथ जो बर्ताव होता है उसे देख-सुनकर मानवता भी सिहर उठती है । फिर भी भारतके हिन्दुओं और मुसलमानोंके बारेमें सर थिओ-डर मोरीसनने जो राय जाहिर की है उसे अफसोसके साथ माननेसे हम इन्कार नहीं कर सकते ।

हिन्दुस्तानके एक प्रमुख मुसलमान सर अब्दुर्रहीमने भी इस अन्तरको बड़े स्पष्ट शब्दोंमें रखा है । उनका कहना है कि:—

"Any of us Indian Muslims travelling, for instance, in Afghanistan, Persia and Central Asia among Chineso Muslims, Arabs and Turks, would at once be made at home and would not find any thing to which we are not accustomed. On the

contrary, in India we find ourselves in all social matters total aliens when we cross the streets and enter that part of the town where our Hindu fellow townsmen live." यानी—कोई भी भारतीय मुसलमान, मिसालके लिये, जब अफगानिस्तान, फारस और मध्य-एशियामें चीनी मुसलमानों, अरबों और तुर्कोंके बीच भ्रमण करता है तो उसे कोई ऐसी चीज नहीं मिलती जिसका अभ्यस्त वह न हो; और फौरन वह महसूस करने लगता है मानो अपने गाँव-घरमें हो। लेकिन इसके ठीक विपरीत हिन्दुस्तानमें, जब हम सड़क पार करके शहरके उस मोहल्लेमें दाखिल होते हैं जहां हमारे हिन्दू नगरवासी निवास करते हैं तो हम अपनेको समस्त सामाजिक मामलोंमें बिलकुल विदेशी पाते हैं।" जो बात सर रहीमने मुसलमानोंके लिये कही है वही बात हिन्दुओंके लिये भी है। एक हिन्दू भी मुस्लिम मोहल्लेमें अपनेको विदेशी पाता है और मुसलमान तो हिन्दूके हाथ का पानी भी पी लेता है मगर हिन्दू मुसलमानके हाथका पानी तक नहीं पीता। स्टेशनों पर हिन्दू और मुस्लिम पानी तथा हिन्दू और मुस्लिम चायकी आवाज सुनकर किस हिन्दुस्तानीको दुख न होगा। आजका शिक्षित-वर्ग दोनों कौमोंके बीच पैदा की गयी इस खाईको पाटनेके लिये व्याकुल है। दरअसल, हमारी प्रगतिके मार्गमें यह अन्तर बड़ा बाधक हो रहा है। हमारी राष्ट्रीयताके मार्गमें इन अन्तरोंसे बहुत बड़ी अड़चनें पैदा हो रही हैं जिसे हिन्दुस्तानकी भलाई चाहनेवाला प्रत्येक समझदार हिन्दू और मुसलमान दिलसे महसूस करता है। बहुत सी साम्प्रदायिक सनातनी तो अशिक्षित हिन्दुओं और अपढ़ मुसलमानोंकी इन नासमझियोंके कारण हैं।

४

यह विष वृक्ष !

भारत वर्षकी स्वाधीनता चाहनेवालोंको आज जिस विकट साम्प्रदायिक समस्याका सामना करना पड़ रहा है यह एक आधुनिक समस्या है। इसका जन्म अभी हालमें ही हुआ है। हिन्दू, मुसलमान, बुद्ध, जैन, पारसी, सिख और ईसाई इस देशमें सदियोंसे आबाद हैं। जबसे यहांके धरातलपर इन सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति एवं सृजन हुआ है तबसे ही इस देशमें तथाकथित धार्मिक एवं जातीय विभेद जारी हैं। किन्तु, इन विभेदोंके बावजूदभी भारत-वासियोंके सामने कभी ऐसी जटिल समस्या उत्पन्न नहीं हुई है जैसी कि आज उपस्थित है। शामिल उद्देश्य (Common object) के कार्यमें प्रायः सभी सम्प्रदायोंके भारतवासी सदैव सहयोग करते रहें हैं। यूरोप तथा अमेरिकाके बहुत पहले हिन्दुस्तानके लोगोंने धार्मिक सहिष्णुताकी समझदारीको महसूस किया था। हिन्दू धर्म तो सहिष्णुताका मूर्तिमान स्वरूप है और यही वजह है कि हिन्दू जाति अभी तक जीवित है। भारतके अन्य सम्प्रदायोंमें यदि कोई कुटिल अदृश्य शक्ति उन्हें जबरन उकसाये नहीं तो, सहनशीलताकी मात्रा काफी मौजूद है। आज साम्प्रदायिकताका, अविलयतका खौफनाक

शैतान हमारे सामने अट्टहास कर रहा है इसका कारण एक वह अदृश्य शक्ति है जो अपने लाभके लिये हमें बेवकूफ बनाकर कठपुतलीकी तरह नचा रही है और हम बिना समझे बूझे, व्यक्तिगत एवं जातिगत स्वार्थोंके तुच्छ नाम पर संसारके सामने अपनी नफरत भरी नासमझीका भद्दा इजहार दे रहे है। अगर हम भारतके अतीत पर निगाह डालें तो हमें मालूम होगा कि मौर्य एवं गुप्त साम्राज्यके जमानेमें, जिसे हम भारतका सुनहला-युग कह सकते हैं, धार्मिक एवं जातीय मतभेदोंका कहीं नामोनिशान नहीं था हालांकि विभिन्न सम्प्रदाय उस समय भी मौजूद थे।

सापेक्षिक भारतीय राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय संगठनका विचार भी नया है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह सच है कि हिन्दुस्तान जैसे एक विशाल देशको एक राजसत्ताके अधीन करनेकी चेष्टायें की गयी थीं। परन्तु उन चेष्टाओं एवं प्रयासोंके मूलमें साम्राज्यवादी भावना काम कर रही थी। देशके विभिन्न भागों को जीतकर एक राजसत्ताके अधीन करनेके लिये व्यक्तिगत विजेताओंकी ओरसे ही ये बेअसर कोशिशें की गयी थीं। किसी भी देशका शासन सुचारु रूपसे संचालित नहीं किया जा सकता जब तक कोई एक दृढ़ केन्द्रीय सत्ता न हो। प्रायः सभी अंग्रेज राजनीतिज्ञों और विद्वानोंकी जबान व कलमसे हम यही कहते सुनते हैं कि भारतमें राष्ट्रीयताका बीजारोपण अंग्रेजोंने किया है जो कि भारतको ब्रिटिश शासनकी एक बहुत बड़ी देन (Gift) समझनी चाहिये। लेकिन जब हम अंग्रेजी सल्तनतके इस दावेपर गौर करते हैं तो हमें इसी नतीजेपर पहुँचना पड़ता है कि भारतमें राष्ट्रीय भावनाका विकास इस ख्यालसे नहीं किया गया कि इससे भारतीयोंको लाभ पहुंचे बल्कि इस मकसदसे किया गया कि समूचे भारतपर शासन करने और शान्ति एवं व्यवस्था कायम रख सकनेमें ब्रिटिश-सरकारकी कठिनाइयां दूर हों—उसे

हुकूमत करनेमें मुश्किलोंका सामना न करना पड़े। यदि कांग्रेसका जन्म देनेमें भारतके वायसराय लार्ड डफरिन और कुछ उदारचेता अंग्रेज अफसरोंका हाथ था तो महज शासनकी सुविधा ही इसका कारण था। कांग्रेस अगर आज स्वराज्यका दावा कर रही है और समस्त भारतको एक राष्ट्रीयताके सूत्रमें बांधनेके लिये सचेष्ट और प्रयत्नशील है तो इसकी वजह अंग्रेजी सल्तनतकी उदारता नहीं है बल्कि संसारके विभिन्न देशोंमें स्वाधीनताके लिये किये गये संघर्षकी प्रतिक्रिया है। लार्ड डफरिनको जब यह मालूम हुआ कि कांग्रेसकी शक्ति ब्रिटिश शासनके लिये आगे चलकर खतरनाक साबित होगी तो फौरन कांग्रेसके प्रति अपना पहलेका रुख बदल दिया। लार्ड डफरिनने ही सर्वप्रथम हिन्दू-मुसलमानका सवाल खड़ा किया और दो राष्ट्रोंकी थ्योरीको जन्म दिया। उन्होंने अपनी एक जहरीली तकरीरमें फरमाया था कि—"× × ×

But perhaps the most patent characteristic of our Indian cosmos is its division into two mighty political communities as distinct from each other as the poles asunder in their religious faith, their historical antecedents, their Social organization and their natural aptitudes; on the one hand the Hindus numbering 190 millions with their polytheistic beliefs, their temples adorned with images and idols, their veneration for the sacred cow, their elaborate caste distinctions and their habits of submission to successive conquerors—on the other hand, the Mohammedans, a nation of 50 millions with their monotheism, their iconoclastic fanaticism, their animal sacrifices, their social equality and their remembrance of the days when enthroned at Delhi they reigned supreme from the

Himalayas to cape Comorin." अर्थात्—"लेकिन हमारी भारतीय दुनियाका शायद सबसे स्पष्ट चरित्र उसकी दो शक्तिशाली राजनीतिक जातियों के विभाजनमें सन्निहित है। इन दोनों जातियोंके धार्मिक विश्वास, उनके पूर्वगत इतिहास, उनके सामाजिक संगठन और उनकी स्वाभाविक योग्यतामें दो ध्रुवोंका सा अन्तर है। एक ओर १९० करोड़ हिन्दू हैं जो अनेक देवताओंमें विश्वास करते हैं, जो अपने मन्दिरोंको मूर्तियों और प्रतिमाओंसे सजाते हैं, जो गायको पवित्र मानकर उसकी पूजा करते हैं जिनमें जबर्दस्त वर्णभेद है और जो क्रमानुगत विजेताओंकी अधीनता स्वीकार करनेके अभ्यस्त हैं। दूसरी तरफ ५ करोड़ मुसलमानोंकी एक राय है जो एक ईश्वरवादी हैं, जो मूर्तिनाशक हैं, जो पशु (गाय) की कुर्बानी करते हैं, जिनमें सामाजिक समानता है और जो उन गुजरे हुए दिनोंकी याद किया करते हैं जब वे दिल्ली के तख्त पर बैठ कर हिमालयसे कुमारी अन्तरीप तकका शासन करते थे—इतने बड़े देशके प्रधान शासक थे।"

भारतकी दो प्रधान जातियों, हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच इस तरह का भेद डालकर लार्ड डफरिनने पहले-पहल इस देशकी उपजाऊ जमीनमें साम्प्रदायिकताका विषैला बीज डाला जिसे लार्ड मिण्टोने अपनी भेद नीतिसे सींचकर बड़ा किया और अब ब्रिटेनके कूटनीतिज्ञ उसे हरा भरा रखकर उसकी छायामें शासनकी थकान मिटाया करते हैं—परेशानियोंसे राहत लेते हैं।

हमारे कहनेका मतलब यह है कि भारतको एक राष्ट्र बनानेकी कोशिश कभी किसीने नहीं की। भारतीय जनसमूहमें सन्निहित सङ्घबद्ध होनेकी उत्कट भावना एवं शक्तिको विकसित करनेकी वास्तविक चेष्टा की ही नहीं गयी। मौर्य एवं गुप्त साम्राज्य एवं मुगल साम्राज्यका विस्तार प्रायः समूचे भारतपर हो गया था मगर इन साम्राज्योंको भी भारतका एक शक्तिसम्पन्न राष्ट्र

बनानेमें सफलता नहीं मिली। इसकी खास वजह यही है कि जिन आधारभूत सिद्धान्तोंपर राष्ट्रीयताकी आलीशान इमारत खड़ी की जाती है उन सिद्धान्तों-को यहां कभी एक स्वरसे स्वीकार ही नहीं किया गया और न इस आधारपर कभी कोशिश ही की गयी। मुगल साम्राज्यका पतन होते ही मराठोंने सिर उठाया। एक तरफ मुगल साम्राज्यका बुझता हुआ चिराग टिमटिमा रहा था और उसकी धुन्धली रोशनीमें मुसलमानोंको अपने उस विशाल साम्राज्यके भव्य-भवनकी खिसकती हुई ईंटें दिखायी पड़ रही थीं जिसे औरङ्गजेबने बिलकुल कमजोर बना दिया था। और दूसरी तरफ मराठोंका यह विश्वास था कि वे हिन्दू और हिन्दुत्वके नामपर फिरसे हिन्दू साम्राज्य कायम करेंगे और पतनोन्मुख मुसलमानोंको खैबर-दर्रेके उस पार खदेड़ कर ही दम लेंगे। लेकिन उनका ख्वाब ख्वाब ही रहा। मुगल साम्राज्यकी कमर टूट चुकी थी और शिवाजीके मरते ही मराठोंका स्वप्न आपसी कलहके कारण काफूर हो गया। इसी बीच सौदागरके रूपमें अंग्रेजोंने भारतमें प्रवेश किया और उन्हें अपना राज्य कायम करनेका मुआफिक मौका मिला। अंग्रेज विजेताओंने एक नये सिरेसे भारतीयोंमें राष्ट्रीयताका प्रचार करनेकी चेष्टा शुरू की।

यहां यह बात याद रखने की है कि हिन्दुस्तानसे साम्राज्यकी भावना कभी लुप्त नहीं हुई। प्राचीन कालके साम्राज्यवादी विजेता सबसे अपनी सत्ता मनवानेकी गरजसे वे सिर्फ दूसरे धर्मोंके ही लोगोंपर आक्रमण करते थे बल्कि स्वधर्मियोंसे भी युद्ध करनेमें उन्हें कोई संकोच नहीं होता था। हिन्दू राजे हिन्दू राजाओंसे लोहा किया करते थे और मुसलमान बादशाह या सिप-हसालार, गैर मुसलमानोंकी ही तरह मुसलमानोंपर भी आक्रमण किया करते थे। मुगल साम्राज्यका आखिरी बादशाह औरङ्गजेबने बीजापुर और गोलकुण्डा जैसी उस समयकी मुस्लिम रियासतोंपर आक्रमण किया और जीत कर अपने

साम्राज्यमें मिला लिया। औरङ्गजेबकी तलवार जिस तरह राजपूतों और मराठों के खिलाफ उठती थी उसी तरह हम-मजहब मुसलमानोंपर भी अपनी तलवार खींचनेसे वह कभी बाज नहीं आया। अपने सहोदर भाइयोंका खून करनेमें जिसे रहम न आया तो वह और क्या नहीं कर सकता ? कहनेका मतलब यह कि एक साम्राज्यवादीके लिये स्वधर्म और स्वजातिकी कोई वकत नहीं होती। वह अपने धर्म और अपने मजहबके लोगोंका खून बहाकर भी अपना साम्राज्य कायम करता है। इसलिये भारतके कुछ मजहब परस्त नेताओंका जो यह ख्याल है कि देशमें एक धर्म, एक जाति और एक मजहबके लोगोंका क्षेत्र कायम हो जानेसे आपसी मारकाट और आपसी कलहका अन्त हो जायेगा वे जबर्दस्त भूल करते हैं। इस झगड़ेका अन्त तो धार्मिक एकतासे हो ही नहीं सकता, इसके अन्त होनेका सिर्फ एक ही मार्ग है और वह है---सामाजिक एवं आर्थिक समानता !

५

'विभाजन और शासन !'

फूट डालकर शासन करनेकी नीति शायद राजनीति-शास्त्रका एक बहुत बड़ा अङ्ग है। किसी भी विजेताके लिये विजितोंमें फूट डालना और फिर उनका मनचाहा शोषण करते रहना एक अतीत कालीन नियम है। यह एक ब्रह्मास्त्र है जिसे प्रत्येक शासक अपने पास रखता है। साम्राज्यवादके अनेक उसूलोंमें एक बड़ा पुर-असर उसूल है। तवारीखके पन्ने इसकी शहादत करते हैं—दुनियाके लोग इसके कायल हैं। अगर भारतवर्षमें अंग्रेज शासकोंने इस नीतिको, अपनी हुकूमतकी जड़ मजबूत करनेके लिये, अख्तियार किया है तो इसके लिये वे दोषी नहीं हैं। दोषी तो दरअसल हम हैं जो इस विकराल नीतिके शिकार होकर गुलामीकी चोलीको दामनसे लगाये फिर रहे हैं। कुछ प्रलोभन देकर, लालच दिखाकर, चन्द टुकड़े फेंककर शासितोंको परस्पर विभाजित कर देना और फिर पूरे इतमीनानके साथ अपना बने रहना, उनकी शक्तिको छिन्न-भिन्न रखना ताकि सङ्घबद्ध होकर पराधीनताके खिलाफसे कोई प्रभावशाली आवाज न उठा सकें, उन्हें फिरकों, दलों और वर्गोंमें बांट देना और फिर यह कहकर उनपर कयामत तक हुकूमत करते रहना कि अगर एक

जोरदार शासन नहीं रहेगा जो इन परस्पर विभाजित एवं छिन्न-भिन्न दलोंके हितोंपर नजर रखे तो ये अलग-अलग लड़ाकू फिरके आपसमें मारकाट और रक्तपात किया करेंगे जिससे देशकी शान्ति एवं व्यवस्था खतरेमें पड़ जायगी, साम्राज्यवादका बड़ा तीखा और जबर्दस्त शस्त्र है। अंग्रेजोंने यह सबक रोमन-साम्राज्यवादियोंसे ली है और बदनसीब हिन्दुस्तानकी जरखेज जमीनपर चारों ओर इस विषैले बीजको बो दिया जो आज लहलहाता हुआ हरा-भरा पौदा बनकर तैयार है। भारत अपनी ऐतिहासिक फूटके लिये काफी मशहूर है। यहां विभिन्न जातियों, धर्मों एवं सम्प्रदायोंके लोग रहते हैं। ऐसे लोगों-को थोड़ेमें भड़का देना आसान काम है। अब मैं 'विभाजन एवं शासन' की ब्रिटिश नीतिके बारेमें चन्द मिसालें देकर यह साबित करनेकी कोशिश करूंगा कि भारतमें इस जहरीले तुख्मको किस तरह बोया, पनपाया और हरा भरा किया गया। १४ अगस्त १९४० को पार्लियामेण्टके हाउस आफ कामन्समें भारत सचिव मि० एल० एस० एमरीने अपने भाषणके दौरानमें कहा था कि—'भारतको ब्रिटिश शासनकी देनके लिये हम अंग्रेजोंको अभिमान है!' अगर फूट और बैरको ही मि० एमरी भारतको ब्रिटिश शासनकी अभूत पूर्व देन (Gift) समझते हैं और इसके लिये उन्हें तथा उन सरीखे अंग्रेज राजनीतिज्ञोंको गर्व है तो हम उनके इस गर्वको वाजिब और ठीक समझते हैं। सन् १८२१ ई० में मई महीनेके 'एशियाटिकजर्नल' के अंकमें एक अंग्रेज राजनीतिज्ञने लिखा था कि—"*Divide et impera* should be the motto of our Indian administration whether political Civil or Military." यानी—"हमारी राजनीतिक मुल्की और फौजी तीनों किस्मकी भारतीय शासन-नीतिका उसूल 'फूट डालो और शासन करो' होना चाहिये।"

स्वर्गीय पंजाबकेसरी लाला लाजपतरायने ठीक ही कहा था कि—“प्रत्येक साम्राज्यवादी शासनका आधार फूट डालकर शासन करना होता है। ब्रिटिश शासन भी भारतवर्षमें सदैव इसी नीतिसे काम लेता रहा है।” भारतमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था करनेवाले विधायकोंमें मि० मार्ले (बादमें लार्ड मार्ले) एक प्रमुख व्यक्ति समझे जाते हैं। इन्हीं मार्ले साहबने कामन्स सभामें भाषण देते हुए एक बार कहा था—“हिन्दुओं और मुसलमानोंका भेद प्राकृतिक (Natural) है। उनके जीवनमें, उनके लिबासमें, उनके इतिहासमें, उनके सामाजिक व्यवहारमें तथा उनके धार्मिक विचारोंमें गहरा भेद है। इस भिन्नताका लाभ ब्रिटिश शासनको अवश्य उठाना चाहिये।” साम्राज्यवादी अंग्रेज राजनीतिज्ञोंका सदासे ही यह ख्याल रहा है कि—‘हिन्दुस्तानमें विरोधी धर्मोंका होना विदेशी आधिपत्यके लिये बड़ा सुविधाजनक है।’

ब्रिटेनके प्रधानमंत्रीकी हैसियतसे ‘साम्प्रदायिक निर्णय’ का ऐलान करनेवाले मि० रैमजे मेकडानेल्ड, ब्रिटिश कट्टरपंथियोंके चंगुलमें पड़कर प्रतिक्रियागामी होनेके पहले साम्यवादी खयालातोंके एक मशहूर राजनीतिज्ञ थे। अपने उन्हीं विकासके दिनोंमें वे भारत-भ्रमण करने आये हुए थे। उनका उद्देश्य भारतकी समस्याओंका निकटसे अध्ययन करना था। इंगलैण्ड वापस जाने पर ‘भारतका जागरण’ (Awakening of India) नामक उन्होंने एक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने भारतको स्वभाग्य-निर्णयका अधिकार पानेका जोरदार शब्दोंमें समर्थन किया। इसी पुस्तकमें ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंकी खोटी नीतिसे झुंझलाकर उन्होंने लिखा है कि:—“......सरकारकी ओरसे भारतके लोगोंमें कटुता एवं वैमनस्य पैदा किया जाता है। कतिपय ब्रिटिश अधिकारी मुस्लिम नेताओंको भड़काते हैं और स्वयं शिमला अथवा लंदनमें बैठकर परदेके पीछेसे डोरी खींचा करते हैं और मुसलमानोंका पक्ष ग्रहणकर

उन्हें कुछ खास रियायतें देकर हिन्दुओं तथा मुसलमानोंमें फूटके बीज बोते हैं—उनमें ईर्षा और डाह पैदा करते हैं।" ये शब्द एक ऐसे प्रसिद्ध अंग्रेज-के दिलसे निकले थे जो अपनी जिन्दगीके अन्तिम दिनोंमें स्वयं घृणित नीति-का शिकार होगया था और साम्प्रदायिक निर्णयकी घोषणा की थी।

'विभाजन एवं शासन' अथवा 'डिवाइड एण्ड रूल' की ब्रिटिश नीतिके सम्बन्धमें अनेक नजीरें और सबूत दिये जा सकते हैं—अलगसे एक ग्रन्थकी रचना की जा सकती है। लेकिन मैं उतने विस्तारमें नहीं जाना चाहता। इस सिलसिलेमें मार्ले-मिण्टो पत्र व्यवहार काफी दिलचस्प होगा। ब्रिटिश सर-कारकी इस विघातक भारतीय नीति पर लेडी मिण्टोकी डायरीके कुछ पृष्ठोंसे काफी रोशनी पड़ती है। १९०५—०६ ई० के जाड़ेके दिनोंमें जार्ज पञ्चमने प्रिंस आफ वेल्सकी हैसियतसे भारतकी यात्रा की थी। १९०६ ई० के वसंतमें हिन्दुस्तानसे घूम-फिर कर वे इंगलैण्ड वापस चले गये और हिन्दुस्तानकी कतिपय समस्याका कुछ अनुभव भी साथ लेते गये। १९०६ ई० की ११ मईको तत्कालीन भारत सचिव लार्ड मार्लेने लार्ड मिण्टोके पास, जो उस समय भारतके वायसराय थे, एक पत्र भेजा। उक्त पत्रमें लार्ड मार्लेने लिखा था कि:—.......... कल प्रिंस आफ वेल्ससे मैंने काफी अर्से तक बातचीत की थी। इस वार्तालापके दौरानमें उन्होंने उन बातोंका बड़ा दिलचस्प वर्णन किया जो भारत-भ्रमणसे उन्हें मालूम हुई हैं और जिन बातोंका उन पर बड़ा असर पड़ा है। भारतीय परिस्थितिका जो अध्ययन उन्होंने किया है उसकी कुंजी यही है कि अगर हमारे शासक जरा विस्तृत सहानुभूति प्रदर्शित करते तो भारतीयोंके साथ हमारा रिश्ता बड़ा अच्छा हुआ होता। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका भी जिक्र किया है जो कि बड़ी तेजीके साथ एक शक्तिशाली संस्था होती जा रही है। बहुत दिनोंसे मेरा अपना निजी ख्याल भी यही है

और इस पदपर आनेसे तो मेरे उस ख्यालकी और भी तसदीक होती है कि कांग्रेसकी बढ़ती हुई ताकत हमारे भलेके लिये है या बुरेके लिये, इसका फैसला करना हम लोगों पर ही निर्भर है। कांग्रेसकी ताकत बढ़ रही है इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। फिर इसे चाहे हम पसन्द करें या नापसन्द !" स्पष्ट है कि कांग्रेसकी बढ़ती हुई ताकतको ब्रिटिश साम्राज्यवादी शुरूसे अपने शासनके लिये खतरनाक समझते आ रहे हैं। अन्ततोगत्वा कांग्रेसके मार्गमें रोड़े अटकाना वे अपना फर्ज समझते हैं।

लार्ड मार्लेके उपर्युक्त पत्रका उत्तर लार्ड मिण्टोने २८ मई १९०६ ई० को दिया था जिसमें उन्होंने लिखा था कि:—"× × × जहांतक कांग्रेसका प्रश्न है, उसका आन्दोलन बिलकुल राजद्रोहपूर्ण है और इसमें मुझे कोई शक नहीं है कि भविष्यके लिये वह घातक है। आप देशी भाषाके अखबारोंके अवतरणोंको देखें तो उनका स्वर और उनकी आवाज अधिकतर राजद्रोह पूर्ण है। इधर कुछ दिनोंसे कांग्रेसका प्रतिद्वन्दी खड़ा करनेके प्रश्नपर मैं बहुत अधिक सोचा करता हूं।" इसी समय लार्ड कर्जनके प्राइवेट सेक्रेटरी सर वाल्टर लारेंस, 'टाइम्स' के सम्वाददाता सर वालेनटाइन शिरोल, सर सिडनी ला तथा कई अन्य प्रतिष्ठित एंग्लो-इण्डियनोंने भी ब्रिटिश साम्राज्यके वफादार और स्वयंभू रक्षक बनकर लार्ड मार्ले और लार्ड मिण्टोके विचारोंका जोरदार समर्थन किया तथा कांग्रेसके विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया गया और हिन्दू-मुस्लिम विद्वेषकी आग प्रज्ज्वलित की जाने लगी।

१९०६ ई० की १९ जूनको लार्ड मार्लेने लार्ड मिण्टोको फिर एक खत लिखा। इस खतमें आपने लिखा था कि—"× × × × हरेक आदमी हमें यही चेतावनी दे रहा है कि हिन्दुस्तानमें एक नयी भावनाका जागरण एवं विस्तार हो रहा है। लारेंस, शीरोल, सिडनी ला आदि सब एक यही गीत

गाते हैं कि—'एक ही नीति और जोशमें तुम अपना हुकूमत जारी नहीं रख सकते। आपको अब कांग्रेससे पाला पड़ा है। याद रखिये, अधिक वक्त गुज-रनेके पहले ही सारे मुसलमान आपके खिलाफ कांग्रेसमें शामिल हो जायँगे।' मैं नहीं समझता कि यह वाकया कहांतक सच होगा।" लार्ड मिण्टोने २७ जूनको लार्ड मार्लेके पत्रका जो उत्तर दिया था उससे जाहिर होता है कि—कांग्रेसके 'खतरे' को वे समझते हैं और उससे सचेत हैं। वे कांग्रेसकी बढ़ती हुई ताकतको मंजूर और महसूस करते हैं जिससे उन्हें पाला पड़ा है और जिसके नेताओंका उन्हें मुकाबला करना होगा।

इसके पश्चात् जो घटनाएं घटीं और जो कूटनीतिक चालें चली गयीं वे उल्लेखनीय हैं। चन्द महीनोंके भीतर ही सर आगा खांके नेतृत्वमें मुसल-मानोंका एक डेपूटेशन लार्ड मिण्टोसे मिला और १ अक्तूबर १९०६ ई० को शिमलामें लार्ड मिण्टोको एक मान पत्र भेंट किया गया। उस मानपत्रमें लिखा गया था कि—'मुस्लिम सम्प्रदायका प्रतिनिधित्व बहैसियत एक सम्प्रदायके होना चाहिये। मुसलमानोंकी हैसियतका अन्दाज महज उनके संख्या बलपर नहीं लगाना चाहिये बल्कि उनके राजनीतिक महत्वपर और साम्राज्यके प्रति की गयी उनकी सेवाओं और वफादारियोंपर ध्यान देना चाहिये।" इस मान-पत्रका जो उत्तर लार्ड मिण्टोने उस समय दिया था उसे प्रत्येक अंग्रेज साम्रा-ज्यवादी आजतक दुहराया करता है। लार्ड मिण्टोने अपने जवाबमें कहा था कि—"मैं आपसे बिलकुल सहमत हूं। मैं इस बातका कायल हूं और मुझे यकीन है कि आप भी मेरी इस बातके कायल होंगे कि इस महाद्वीप जैसे देशकी आबादीमें शामिल विभिन्न जातियोंके विश्वासों एवं परम्पराओंकी अपेक्षा करके हिन्दुस्तानमें यदि कोई निर्वाचित प्रतिनिधित्वकी प्रणाली प्रचलित की जायगी और लोगोंको मताधिकार प्रदान किया जायगा तो वह बड़ा नुक-

सान पहुंचानेवाला होगा और उसकी नाकामयाबी निश्चित है। विशाल भारतीय जन समूहको प्रतिनिधि मूलक संस्थाके निर्माणका कोई इल्म नहीं है। मुसलमानोंको मैं यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि जिस किसी भी शासन-व्यवस्थाके निर्माण अथवा पुनःसङ्गठनसे मेरा ताल्लुक होगा उसमें मुसलमानोंके राजनीतिक अधिकार और स्वार्थ, एक सम्प्रदायके नाते, सुरक्षित रखा जायगा।" मार्ले-मिण्टो शासन-सुधारकी योजना आयी और साथमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वका जहरील उसूल अमलमें लाया गया।

सर आगाखां कौन हैं और ब्रिटिश साम्राज्यवादके वे कितने बड़े वफादार तथा हिमायती हैं इसकी जानकारी भारतकी राजनीतिक हलचलोंसे जरा भी सम्बन्ध रखनेवालोंको जरूर होगी। मिश्रके एक प्रभावशाली अरबी अखबारने एक बार सर आगाखांको हिन्दुस्तानकी एक सबसे बड़ी बीमारी, लिखा था। वर्तमान टर्कीके जनक स्वर्गीय मुस्तफा कमाल पाशाकी भी कुछ ऐसी ही राय थी। १९२३ ई० के अन्तमें भारत सचिवकी कौंसिलके सदस्य अमीर अली खां और सर आगाखांने टर्कीके वजीर आजमके पास अंग्रेजीमें एक खत भेजा था। टर्कीके खलीफाके ये अन्तिम दिन थे। उक्त पत्रमें इन लोगोंने टर्कीकी सरकारको यह सलाह दी थी कि—"निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी शक्ति कम करनेको हम नहीं कहते मगर खलीफाकी शक्ति मुसलमानोंके मजहबी मुखियाके रूपमें शरियतके मुताबिक अक्षुण्य रखी जाय।" इस धर्मान्धतापूर्ण सलाहपर रायजनी करते हुए मुस्तफा कमाल पाशाने कहा था—"आगा खां अंग्रेजोंका खास करिन्दा है और उसके जरिये अंग्रेजोंने टर्कीको कमजोर बनानेकी यह एक नयी चाल चली है।" टर्कीमें सर आगाखांकी दाल नहीं गली। टर्कीके प्रजातन्त्रने खिलाफतको—मजहबी गद्दीको उठा देनेका निश्चय किया। ४ मार्च १९२४ को खलीफाको गद्दीसे उतार कर निर्वासित कर दिया गया।

उसी दिन टर्कीके मन्त्रिमण्डलसे धर्माधिकारपद, तमाम मजहबी मकतब और काजियोंकी कचहरियां हमेशाके लिये उठा दी गयीं।

लेडी मिण्टोकी डायरीके पन्नोंको उलटनेसे ब्रिटिश कूटनीतिकी और भी अनेक बातोंका पता चलता है। शिमलामें मुस्लिम नेता नवाब मोहसिन-उल-मुल्ककी वफातपर अपनी समवेदना प्रकट करते हुए वे लिखती हैं कि—हालके मुस्लिम डेपुटेशनकी बात उन्होंने ही सुझायी थी। लेडी मिण्टोने लिखा है कि १ अक्तूबर १९०६ ई० की शामको लार्ड मिण्टोको एक अंग्रेज अफसरका पत्र मिला था जिसमें उक्त अफसरने लिखा था कि—"मैं आपको बड़ी खुशी के साथ बताना चाहता हूं कि आज एक बहुत बड़ी घटना घटी है। यह एक ऐसा राजनीतिज्ञतापूर्ण कार्य हुआ है जिसका असर भारत और भारतके इतिहासपर अनेक लम्बे वर्षोंतक पड़ेगा। यह ६ करोड़ २० लाखकी आबादीके लोगोंको (मुसलमानोंको) राजद्रोहियोंके गुटसे अलग रखनेका कार्य है।" भारतके विधानमें मुसलमानोंका साम्प्रदायिक दर्जा स्वीकार किये जानेसे प्रत्येक अंग्रेज साम्राज्यवादीको खुशी हुई है क्योंकि इससे साम्राज्यवादकी जड़ मजबूत होती है। मार्ले-मिण्टोने मुसलमानोंको खुश रखनेकी अपनी चालमें कोई कसर उठा नहीं रखी। लार्ड मार्लेने अपने एक पत्रमें बड़े प्राकृतिक ढंगसे मुसलमानोंको—'दुइजके चाँदकी सन्तान' (Sons of the cresent) लिखा था और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। लेकिन यह सब महज चापलूसी थी ताकि मुसलमान अपने देशकी आजादीके लिये कांग्रेसमें न मिलें और सदा अपना अलग दावा पेश करते रहें ताकि भारतकी एकतामें व्याघात पड़ता रहे। लेकिन समझदार और वतन परस्त मुसलमानोंपर ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंकी इस चापलूसीका कुछ भी असर नहीं पड़ा। मुसलमान हमेशासे ही आजादीकी लड़ाईमें साथ रहे हैं और आज भी हैं। कुछ मजहब परस्त और तंगदिल

व दिमागके मुसलमानोंको गुमराह करनेमें अंग्रेज कूटनीतिज्ञोंको सफलता मिली है। लेकिन जब मुसलमानोंकी मांगें बढ़ने लगीं तो ब्रिटिश राज-नीतिज्ञ भी परेशान हो गये और आगे चलकर स्वयं लार्ड मिण्टोने यह महसूस किया था कि साम्प्रदायिक मुसलमानोंको खुश करनेकी दिशामें हम बहुत आगे बढ़ गये हैं और समझदारीका तकाजा है कि इस नीतिको—मुसलमानोंको खुश करनेकी नीतिको यहीं त्याग देना ही उचित होगा। आज तो साम्प्रदायिक मुस्लिम-नेता भी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व सम्बन्धी मार्ले-मिण्टो योजनाकी आलोचना करते देखे जा रहे हैं और मुसल-मानोंके लिये उसे हानिकारक बताते हैं। २६ जुलाई १९४० को क्वेटामें बलूचिस्तान प्रान्तीय मुस्लिम लीगके अधिवेशनमें अध्यक्षकी हैसियतसे बोलते हुए अ० भा० मुस्लिम लीगके मंत्री नवाबजादा लियाकत अली खांने कहा था कि—'मार्ले-मिन्टो योजनाने व्यवस्थापिका सभाओंमें साम्प्रदायिक बहुमत एवं अल्पमतका स्थायी तौर पर निर्माण कर दिया है। इस सिद्धान्तके अनु-सार मुसलमान हमेशा अल्पमतमें और हिन्दू हमेशा बहुमतमें बने रहेंगे। मुसलमानोंको यह सिद्धान्त पसन्द नहीं है। हिन्दुस्तानमें हिन्दुओंका अलग राष्ट्र है और मुसलमानोंका राष्ट्र हिन्दुओंसे बिलकुल अलग है। हिन्दू और मुसलमान सम्मिलित रूपसे एक राष्ट्रका निर्माण नहीं करते। अतएव, मुसलमान अपना पृथक राष्ट्र—पाकिस्तानकी स्थापना करेंगे और अपने राष्ट्रमें बहुमतमें रहेंगे।" लार्ड मार्ले और लार्ड मिन्टोने जिस राष्ट्रीयता विरोधी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वका सूत्रपात्र किया था उससे हमारी राष्ट्रीय उलझनोंके साथ ही साथ अंग्रेजोंकी उलझनें भी बढ़ी हैं और समझदार ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इस स्थितिको अब महसूस करते हैं।

हिन्दुओं और मुसलमानोंको सदा दो दलोंमें विभक्त रखनेके लिये ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने उन चेष्टाओं पर भी हड़ताल फेरी है जो एकताकी दिशामें समय-समय पर की गयी है। ३० दिसम्बर १९३५ ई० को पूनामें अ० भा० हिन्दू महासभाके अध्यक्ष पदसे भाषण देते हुए महामना पं० मदन मोहनजी मालवीयने बड़े खेदके साथ कहा था कि—"इलाहाबादमें मौलाना शौकतअलीसे मिलकर मैंने जो 'एकता सम्मेलन' किया था उसके विफल हो जानेका मुझे बड़ा दुःख है। हमारी इस एकता सम्बन्धी चेष्टाओंको अंग्रेज राजनीतिज्ञोंने अपनी भलाईके लिये विफल किया है। हम मुसलमानों को ३२ फी सदी प्रतिनिधित्व देनेको तैयार हो गये थे। मगर भारत सचिव सर सेमुएल होरने मुसलमानोंको ३३। फी सदी प्रतिनिधित्व देनेका वादा किया और इस तरह हमारी एकताकी चेष्टाको उन्होंने अपनी विघातक कूटनीति के द्वारा नष्ट कर दिया। यह बड़े आश्चर्यकी बात मालूम होती है कि एक ओर तो अंग्रेज राजनीतिज्ञ यह शिकायत करते हैं कि चूंकि भारतीयोंमें साम्प्रदायिक एकता एवं सहिष्णुता नहीं है इसलिये वे आजादी पानेके काबिल नहीं हैं और दूसरी ओर जब हम अपनी साम्प्रदायिक समस्याओंको हल करनेकी कोशिशें करते हैं तो ये ही ब्रिटिश राजनीतिज्ञ बीचमें दखल देकर हमारी सारी कोशिशोंको बेकार कर देते हैं।" मालवीयजीकी यह उक्ति अक्षरशः सत्य है। आज भी ब्रिटिश राजनीतिज्ञ हमारी एकताके मार्गमें सबसे बड़े बाधक हो रहे हैं। वे साम्प्रदायिक नेताओंको अनुचित प्रोत्साहन देकर हमारी समस्याओंको जटिलतर बनाया करते हैं। हमारे शासकोंकी यह हरकतें किसीसे छिपी नहीं हैं।

जिस प्रकार दिन और रात दुनियाको अलग-अलग रंगोंसे चित्रित कर देते हैं उसी प्रकार कुछ दुस्साहसी व्यक्ति रात्रिके अन्धकारका रूप धारण कर

मानवके कर्तव्य और सद्बुद्धिके प्रकाशको ढंक देना चाहते हैं। मानवी दुष्ट-वृत्तियोंको जहां जोर मारनेका अवसर मिलता है वहां वे मर्यादाके समस्त शाश्वत बंधनोंको तोड़कर संसार पर खग्रासकी सृष्टि करना चाहती हैं और एक क्षणके लिये यह आभास पैदा कर देती हैं मानों दुनियामें सत्य एवं शिव-का कोई त्राता ही न रहा। संसारका इतिहास ऐसे उदाहरणोंके काले पन्नोंसे भरा हुआ है और हमारा आजका इतिहास फिर उसी असत् चित्रणमें लीन हो रहा है। हमारे देशके कुछ साम्प्रदायिक नेता अपनी कारगुजारियोंसे उस सुनहले भविष्य पर परदा डालनेकी चेष्टामें लीन हैं जिसकी ओर हम अग्रसर हो रहे हैं। इनके कार्यों से ब्रिटिश अधिकारियोंको यह कहनेका बहाना मिल रहा है कि ब्रिटिश सरकार अगर भारतको स्वाधीन कर देती है तो भारतमें अराजकता फैल जायगी और यहांके लोगोंका जान व माल खतरेमें पड़ जायगा। ७ अगस्त १९४० को भारतकी राजनीतिक परिस्थितिके सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारकी ओरसे वायसराय लार्ड लिनलिथगोने जो घोषणा की थी उसमें भी उन्होंने देशकी साम्प्रदायिक उलझनोंका जिक्र करते हुए कहा था कि:—It goes without saying that they (British government) could not contemplate the transfer of their responsibility for the peace and welfare of India to any system of government whose authority is directly denied by large and powerful elements of India's national life. Nor could they be parties to the coercion of such elements into submission to such a government." यानी—"कहनेकी जरूरत नहीं कि ब्रिटिश सरकार भारतकी शांति एवं कल्याणके लिये अपनी जिम्मेदारियोंको किसी ऐसी हुकूमतके हाथों-में सौंपनेका विचार भी नहीं कर सकती, जिसके अधिकारको भारतके राष्ट्रीय जीवनके महान् और शक्तिशाली वर्ग प्रत्यक्षरूपमें अस्वीकार करते हों; और न

तो वह ऐसे वर्गोंपर इस प्रकारकी सरकारकी सत्ता स्वीकार कर लेनेके लिये दबाव डालनेको ही तैयार हो सकती है।" यह कहकर वायसरायने अल्पसंख्यकोंके नाम पर स्वराज्यके मार्गमें रोड़े अटकानेवालों और साम्राज्यवादियोंके इशारे पर नाचनेवाले प्रतिक्रियावादी नेताओंको प्रोत्साहित किया है। वायसरायकी इस घोषणासे साम्प्रदायिक नेता और भी ऊधम मचायेंगे और कांग्रेसके खिलाफ तरह-तरहकी बेबुनियादी शिकायतें करेंगे।

वायसरायके इस ऐलान पर हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्डस्‌में जो वाद-विवाद हुए उन वाद-विवादोंमें भी मुसलमानोंको काफी भड़काया गया और मुसलिमलीगको बड़ा गैरमुनासिब महत्व दिया गया। भारत सचिव मि० एमरीने अपने वक्तव्यमें कहा कि—कांग्रेसका भारतकी ओरसे बोलनेका दावा भारतके पेचीले राष्ट्रीय जीवनके बहुत महत्वपूर्ण तत्वों द्वारा एकदम अस्वीकार किया गया है। इन तत्वोंमें सबसे मुख्य वह महान मुस्लिम सम्प्रदाय है जिसके भीतर नौ करोड़ आदमी हैं और जिसका उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूरबी भारतमें बहुमत है, किन्तु समस्त देशमें अल्पमतके रूपमें फैला हुआ है।" मि० एमरीकी इन्हीं बातोंसे मिलती-जुलती बात उप भारत सचिव लार्ड डेवोनशायरने हाउस आफ लार्डस्‌में कही थी। उन्होंने कहा था कि—"कांग्रेसका दावा है कि वह भारतके विचारों एवं उसकी आकांक्षाओंका प्रतिनिधित्व करती है। मगर उसके इस दावेका मुस्लिमलीग बराबर ही पग-पगपर खण्डन करती आई है। मुस्लिमलीग कांग्रेसके समस्त भारतकी ओरसे बोलनेके दावेको पूर्णतया अस्वीकार करती है।" इन अवतरणोंसे स्पष्ट है कि ब्रिटिश अधिकारी यह कभी नहीं चाहते कि भारतमें एकता कायम हो और भारतकी समस्त जातियां एकस्वरसे स्वराज्यका नारा बुलंद करें। वे हमेशा ही हिन्दुओंके खिलाफ मुसलमानोंको और मुसलमानोंके खिलाफ हिन्दुओं और सिखोंको

उभाड़ा करते हैं—उन्हें बेजा बढ़ावा देकर साम्प्रदायिक कटुताका विस्तार करते हैं। अपनी इन हरकतोंके बावजूद भी अंग्रेज राजनीतिज्ञ यह कहनेसे बाज नहीं आते कि भारतवासी अपने आपसी झगड़ेके कारण ही स्वभाग्य निर्णयके अधिकार पानेसे वंचित हैं। ब्रिटिश सरकार तो इन झगड़ोंको मिटाकर भारतवर्षको स्वराज्य पानेकी ओर अग्रसर करनेमें प्रयत्नशील है। लेकिन यह सब घड़ियालके आंसू हैं। अगर ब्रिटिश अधिकारी साम्प्रदायिक संस्थाओंको और साम्प्रदायिक नेताओंको बेजा बढ़ावा न देते रहते तो भारतवर्षसे ये साम्प्रदायिक झगड़े कभीको मिट गये होते। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ फूट डालकर शासन करनेकी नीति पर हमेशा चलते रहे हैं और भारतके सम्बन्धमें 'विभाजन एवं शासन' उनका मोटो रहा है।

६

अल्पमत बनाम बहुमत

अल्पमत और बहुमतकी समस्या दुनियांके लिये नयी नहीं है। यह एक प्राचीन एवं सर्वदेशीय समस्या है। हां, अर्वाचीन अल्पसंख्यक समस्या, संसारकी परिवर्तनशील परिस्थियोंके कारण कुछ अधिक दुरूह तथा जटिल जरूर हो गयी है। आधुनिक राजनीतिक परिभाषाके अनुसार उस जाति विशेष अथवा समुदाय विशेषके लिये व्यवहृत होता है जो एक विचार पूर्ण संख्यामें किसी राष्ट्रकी जन संख्याका एक अंग हो। इस विशिष्ट अल्पसंख्यक जातिके लोग प्रायः धार्मिक अथवा सांस्कृतिक विवेकके लिहाजसे एक सूत्रमें आबद्ध होते हैं, उनकी सभ्यता, सामाजिकता रहन-सहन तथा आचार-विचार अकसर एक सा होते हैं। किसी देशकी अल्पसंख्यक जाति पर उस देशकी बहुसंख्यक जातिका प्रभाव रहता है और यह स्वाभाविक भी है। अल्पसंख्यक जातियों की तरह बहुसंख्यक जातिके लोग भी धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकताके सूत्रमें बँधे रहते हैं। ये अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक जातियां अपनी संस्कृति, परम्परा, धर्म एवं सामाजिक संगठनको गैरजातिके प्रभावसे अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये निरन्तर सचेष्ट रहती हैं और इसके लिये वे बड़ासे बड़ा

बड़ा बलिदान करनेसे भी नहीं हिचकतीं। किसी भी देशमें बसनेवाली विभिन्न जातियोंके भीतर जब तक राष्ट्रीय भावनाका पूर्ण विकास नहीं हो पाता और वे व्यक्तिगत अथवा जातिगत स्वार्थोंको राष्ट्रीय स्वार्थमें भी लीन नहीं कर देतीं तबतक उन जातियोंमें परस्पर संघर्षका होना अनिवार्य-सा होता है। चूंकि अल्पमतको बहुमतसे भय बना रहता है इस लिये उसे अपने जातिगत स्वार्थों की रक्षाके लिये शासन एवं व्यवस्थाकी शरण लेनी पड़ती है। इसी तरह बहुमतमें भी यह चेतना जागृत होती है कि उसके स्वाभाविक अधिकारों में—उन अधिकारों एवं सुविधाओंमें जो बहुमतके नाते उसे प्राप्त हैं कोई हस्तक्षेप न होने पाये और अबाधगतिसे वह अपने अधिकारोंका उपभोग करता रहे। अल्पमतके लिये बहुमतको किंचित् त्याग करना ही पड़ता है। और अगर वह त्याग नहीं करता तो उसके रुख एवं बर्तावसे अल्पमतका चौकन्ना होना अस्वाभाविक बात नहीं है। यहींसे अल्पमत एवं बहुमतका झगड़ा खड़ा होता है।

शासन-विधानके उत्तरोत्तर विकास और राजनीतिक जागरणके समूचे इतिहासमें संसारके राजनीतिज्ञ इस मसले पर हमेशा ही माथापच्ची करते रहे हैं। गणतंत्र मूलक सिद्धान्तके प्रचलित होनेके पहले, जब बहुमतका निर्णय माननेकी प्रथा नहीं थी, अल्पमतकी समस्या इतनी जटिल नहीं समझी जाती थी। गणतंत्रके पूर्वका युग एकाधिकार सम्पन्न राजसत्ता, सामंतशाही, कुलीन-तन्त्र एवं मनसबदारी हुकूमतोंका युग था। इस युगमें अल्पसंख्यक ही बहुसंख्यक पर शासन किया करता था। यह अल्प संख्यक वर्ग कुलीनता, सम्पत्ति, पौरुष, सभ्यता, जीवन एवं जातिकी तथाकथित उच्चता तथा समझ-दार होनेके नाम पर शासनकर्ता होनेका दावा किया करता था। उस समय राजाओंका दैवी अधिकार (Divine rights of Kings) माना जाता था

और राजे जनसाधारणपर स्वेच्छाचारितापूर्ण मनमाना शासन किया करते थे। शासन कार्यमें जनताकी आवाज़का कोई मूल्य नहीं होता था ; वह राजाका अन्धभक्त होती थी। लेकिन इङ्गलैंडके राजा प्रथम चार्ल्सको मारकर सर्वप्रथम ब्रिटेनने 'राजाके दैवी अधिकार' का अन्त किया। इसके बाद १७८९ ई० में फ्रेंच राजक्रान्ति हुई और मतगणनाके आधारपर फ्रांसके सोलहवें लूईको फांसी देनेके पक्षमें ३६१ और विपक्षमें ३६० वोट पड़े थे। फलतः १ वोटके बहुमतसे उसे फांसी दे दी गई। आगे चलकर संसारके अनेक विचारकोंने इस बहुमतके नाम और अधिकारको कलंकित करना भी बताया है। इसके बाद जनताके नागरिक अधिकार एवं धार्मिक सहिष्णुताके आधारपर गणतंत्रका विकास आरम्भ हुआ। फ्रेंच राज्यक्रान्तिने सदियोंसे शोषित एवं उत्पीड़ित जनसमूहको 'स्वतन्त्रता, समानता एवं बंधुत्व' (Liberty, Equality and Fraternity) का अमर पाठ पढ़ाया। लेकिन गणतंत्रमूलक सिद्धान्तके आधार पर शासनका संचालन आरम्भ होते ही अल्पमत एवं बहुमतकी समस्या विशेष दुरूहताके साथ आ उपस्थित हुई। यूरोपमें यहूदियोंके साथ अन्याय होने लगा। कला, व्यापार एवं भौतिक विज्ञानमें यहूदियोंको असाधारण उन्नति करते देखकर यूरोपके लोगोंमें जातीय घृणा एवं धार्मिक असहिष्णुताके भाव जागृत हुए। यहूदी अल्पमतमें थे। इस लिये बहुसंख्यक ईसाइयोंके सन्निहित स्वार्थोंकी रक्षा करनेके नाम पर यहूदियोंको उनके स्वाभाविक अधिकारोंसे वंचित किया गया। लेकिन आगे चलकर यूरोपमें 'मनुष्य के अधिकार' (Right of Man) का ऐलान किया गया और यहूदियोंके साथ भी समानताका व्यवहार होने लगा। इधर रक्त एवं रंग भेदके नामपर नाजीवाद और फासिस्टवादका जो धूमकेतु उदय हुआ है उसके कारण यहूदियोंपर फिर ज़ुल्म होने लगे हैं। जर्मनी तथा इटलीमें यहूदियोंसे

परहेज किया जाता है और उनके नागरिक अधिकार छीन लिये गये हैं।

अटलांटिक महासागरके उस पार अमेरिकामें भी जातिगत घृणाका प्रचण्ड रूप देखनेमें आया है। वहां जाकर बसनेवाली यूरोपकी ईसाई जातियोंने अमेरिकाके मूल निवासियों तथा हब्शियोंको अपना गुलाम बनाया और वहां भी अल्पमतके जातिगत एवं मनुष्यगत अधिकारोंको बड़ी बेरहमीसे कुचला गया। यद्यपि गुलामीकी प्रथा अब मिटा दी गई है और मूल निवासियों तथा हब्शियोंको भी नागरिक अधिकार मिल गया है तो भी अमेरिकामें हब्शियोंके साथ होनेवाले घृणित व्यवहारोंके सनसनीखेज समाचार आज दिन भी मिला ही करते हैं। यूरोपसे अमेरिका जाकर बसनेवालोंमें पुर्तगीज, स्पेनिश, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज और डच थे। लगभग तीन सौ वर्षतक अमेरिका महाद्वीपमें इन यूरोपीय जातियोंकी औपनिवेशिक शक्तियां प्रभुता कायम करनेके लिये आपसमें लड़ती रहीं लेकिन अन्तमें उनके झगड़े मिट गये और वे सबकी सब एकमें मिलकर अमेरिकन हो गईं। आज सारा संसार उन लोगोंको पुर्तगीज, स्पेनिश, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज या डचके नामसे नहीं बल्कि अमेरिकनके नामसे जानता और मानता है। वे पहले अमेरिकन हैं, उसके बाद और कुछ। वे अब अमेरिकाको अपना वतन और अपनेको अमेरिकाकी वफादार औलाद मानते हैं। अब वे उन देशोंको अपनी पितृभूमि एवं पवित्र भूमि नहीं मानते जहांसे सदियों पहले उनके पूर्वज अमेरिकामें आकर बस गये थे।

सन् १९१८ ई० में यूरोपीय महायुद्धका अंत होने पर मध्य यूरोपमें अल्प संख्यक जातियोंका एक नया नमूना देखनेको मिला। मध्य यूरोपके दो महान साम्राज्योंका—जर्मनी और अस्ट्रिया-हंगरीका—अंगच्छेद करके पोलैंड, जेकोस्लोवेकिया, जुगोस्लाविया तथा हंगरी जैसे नये राष्ट्रोंका सृजन हुआ।

दुनियाके नक्शेपर कई नये राष्ट्रोंकी नयी सरहदें नजर आयीं । साथ ही अल्प-मतका सवाल खड़ा हुआ । इन नये देशोंमें पोल, जर्मन, मगामट, जेक, स्लोवक, क्रोट, रुमानियन तथा यहूदी आदि जातियोंको एक भौगोलिक सीमाके अन्दर आबाद होना पड़ा । इन जातियोंमें काफी भिन्नतायें थीं । अतएव राष्ट्रसंघने अल्पसंख्यक जातियोंके अधिकारों एवं हितोंकी रक्षाके लिये कुछ विशिष्ट नियम बना दिये और उन्हीं नियमोंके आधार पर ये अल्पमत अपने तथा पड़ोसके देशोंसे मिलकर सहयोगिताके साथ रहने लगे । आज सारे संसारमें अल्पमतकी समस्या उपस्थित है और इसे हम सिर्फ बनावटी, स्वेच्छाचारितापूर्ण एवं अस्थिर समस्या कहते हैं । मानवके अधिकार एवं नागरिकताके मौलिक अधिकारोंकी रक्षा करते हुए राजनीतिक एवं आर्थिक समानताके आधारपर आजकी अल्पसंख्यक समस्याको सरलतासे सुलझाया जा सकता है बशर्ते कि कुछ सन्निहित स्वार्थके लोग फिजूलकी अड़चनें न पैदा करें ।

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति तथा समूह समानताके आधारपर राज्यसे संरक्षण एवं सहायता पानेका अधिकारी होता है और राज्यका यह फर्ज है कि सभी व्यक्तियों एवं समुदायोंके साथ समानताका बर्ताव करे तो भी अल्पमतके लिये विशेष संरक्षण की भावना और मांग उस अल्पमतके लिये ही खतरेसे खाली नहीं है । जो समुदाय इस तरहका संरक्षण चाहता है उसका जोश मर जाता है, आत्म निर्भरता और आत्म विश्वासकी वह शक्ति क्षीण हो जाती है और उसे दूसरेकी दयाका मुहताज होना पड़ता है । जो अल्पमत आत्मरक्षाके के लिये विशेष सुविधाएं चाहता है उसे ऐसी सुविधाओंसे लाभ तो बहुत कम होता है मगर उसके और अन्य समुदायोंके बीच एक ऐसी खाई पड़ जाती है कि संरक्षण एवं विशेष सुविधा चाहनेवाले वर्गकी प्रगतिशीलता मन्द

पड़ जाती है—उन्नति करनेका उसका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। उसके रास्तेमें अनेक बाधाएं खड़ी हो जाती हैं। इसके सिवा इन संरक्षणों एवं सुविधाओंका नतीजा यह होता है कि अल्पसंख्यक जातिका दृष्टिकोण संकीर्ण हो जाता है और राष्ट्रीय गतिविधियोंसे वह अपनेको अलग समझने लगती है। जनसमूहको आलोड़ित करनेवाली जीवनकी विद्युत् शक्ति उस जातिमें नहीं रह जाती। हर हालतमें संरक्षण और विशेष सुविधायें मांगना और पाना, दोनों खतरनाक होता है। आजकी दुनियामें, जब कि हमारी नजरोंके सामने अनेक क्रान्तिकारी तबदीलियां हो रही हैं, यह ख्याल करना बहुत बड़ी भूल है कि कोई संरक्षण या विशेषाधिकार किसी जातिकी रक्षा कर सकेगा। सिर्फ समझदारी, दिमागी कूवत, संगठित कार्य, एकता और मिल्लत से ही कुछ रक्षा हो सकती है। किसी जाति विशेषके लिये संरक्षण और विशेषाधिकार मांगना उस कौमकी बुजिदलीका इजहार देना है। इस सिलसिले में मुख्तलिफ रायें हो सकती हैं लेकिन इस रायसे तो सभी सहमत होंगे कि संरक्षण और विशेषाधिकार वही कौम चाहेगी जो कमजोर होगी, जिसमें जिन्दगी और जोश न होगा।

भारतकी अल्पसंख्यक समस्या पर हमें संसारके अन्य देशोंके अल्पमतकी स्थितिको मद्देनजर रखकर ही तुलनात्मक दृष्टिसे विचार करना होगा। भारत की अल्पसंख्यक समस्याके सम्बन्धमें कुछ दिनों पूर्व संयुक्त प्रान्तकी कांग्रेसी सरकारके भूतपूर्व पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी पं० वेङ्कटेशनारायण तिवारीने 'सरस्वती' में एक विचारपूर्ण लेख लिखा था जिसका एक अंश मैं यहां उधृत करता हूं। आप लिखते हैं—" × × × × अल्पमतका सवाल है क्यों? अंग्रेजीमें इसे 'माइनारिटी' का प्रश्न कहते हैं। उर्दूवाले 'अक्लियत' का मसला कहते हैं। अक्लियत, माइनारिटी और अल्पमत तीनों एक ही बातके

द्योतक हैं। हिन्दुस्तानकी अल्पताका अर्थ आजकल राजनीतिक क्षेत्रोंमें जो लगाया जाता है उसका वह अर्थ वास्तवमें है नहीं। हिन्दुस्तानमें अल्पताका निर्णय साम्प्रदायिक विभेदोंके आधार पर किया जाता है। योरपमें जाति विभेदके आधारपर किसी समुदाय विशेषको किसी दूसरे समुदाय विशेषकी तुलनामें अल्पसंख्यक समुदाय मानते हैं। जेकोस्लोवेकियामें जर्मन, पोल और हंगेरियन अल्पसंख्यक थे; लेकिन उनके अल्पताकी कसौटी जातिभेद थी न कि धार्मिक भेद! जर्मनीमें अनेक सम्प्रदाय हैं। रोमन कैथलिक वहांपर अल्पमतमें हैं। लेकिन जर्मनीके अन्दर रोमन कैथोलिकोंको कोई अल्पसंख्यक समुदाय विशेष नहीं मानेगा। जर्मनीके सब जर्मन जर्मन हैं, चाहे इस सम्प्रदायके माननेवाले हों, चाहे उस सम्प्रदायके। साम्प्रदायिक भेद पर नहीं बल्कि जातिभेदपर योरपमें अल्पता मानी जाती है। दुर्भाग्यवश हिन्दुस्तान में अंग्रेज शासकोंने अल्पताका अर्थ ही दूसरा लगाया है। उन्होंने जातिभेद नहीं किन्तु सम्प्रदाय भेदके आधार पर हिन्दुस्तानके निवासियोंको बहुमत और अल्पमतकी पदवी दे डाली है। यही कारण है कि आज हिन्दुस्तानके मुसलमान अपनेको हिन्दुस्तानके हिन्दुओंसे एक भिन्न जातिका कहते हैं। वास्तवमें यह बात ठीक नहीं है। बंगालके हिन्दू और मुसलमान जातिकी दृष्टिसे एक हैं, यद्यपि दोनों भिन्न-भिन्न मजहबके माननेवाले हैं। दोनोंके रहन-सहन, बोलचाल और मानसिक तथा नैतिक प्रतिक्रियाओंके व्यापार एवं सांस्कृतिक बुनियादोंमें समानता हैं। सिंधके मुसलमानों और बंगालके मुसलमानोंमें कोई समानता (मजहबके सिवा) नहीं है।..........यदि युक्त प्रान्तके मुसलमान युक्त प्रान्तके हिन्दुओंसे, केवल इस लिये भिन्न हैं कि दोनोंके मजहब भिन्न-भिन्न हैं, तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि युक्त प्रान्त के मुसलमानोंमें—शियों और सुन्नियोंमें—भी जाति भेद है। अहमदिया

और वहाबी मुसलमानोंकी भी जाति शियों और सुन्नियोंकी जातियोंसे भिन्न माननी पड़ेगी।"

हिन्दुस्तानकी अल्पमत समस्याका समाधान, अगर तीसरा दल हस्तक्षेप न करे तो, बड़ी सरलतासे हल हो सकता है। अल्पमतके समस्याको सबसे अधिक तूल तो गोलमेज परिषद्‌में दिया गया। गोलमेज परिषद् भारतके भावी शासन विधानका ढांचा तैयार करनेके लिये बुलाई गयी थी। इसी लिये अंग्रेज कूटनीतिज्ञोंने साम्प्रदायिक नेताओंको उभाड़ा और अल्पमतके समस्याको ज्यादासे ज्यादा पेचीदा बनाया। इस मसलेको हल करनेके लिये एक अल्पसंख्यक कमेटी बनाई गई। उक्त कमेटीकी एक बैठकमें भाषण देते हुए गांधीजीने कई खरी बातें पेश कीं। उन्होंने असंदिग्ध भाषामें यह कहते हुए स्थितिको बिलकुल साफ कर दिया कि विभिन्न जातियोंको अपने पूरे बलके साथ अपनी अपनी मांग पर जोर देनेके लिये उत्साहित किया गया है। उन्होंने पूछा कि क्या भारतीय प्रतिनिधियोंको अपने देशके ६००० मील केवल साम्प्रदायिक प्रश्न हल करनेके लिये बुलाया गया है? गांधीजीने सर ह्यूबर्टकारकी अल्पसंख्यक जातियोंकी चुटकी लेते हुए कहा कि—सर ह्यूबर्टकार तथा उनके साथियोंको इससे जो संतोष हुआ है वह मैं उनसे न छीनूंगा लेकिन मेरे विचारमें उन्होंने जो कुछ किया है वह मुर्देका आपरेशन करनेके समान है। सरकारकी यह अल्पसंख्यक योजना उत्तरदायित्वपूर्ण शासन अथवा स्वराज्य प्राप्तिके लिये नहीं बल्कि नौकरशाहीकी सत्तामें भाग लेनेके लिये ही बनाई गई है। किसी ऐसे प्रस्ताव या योजनापर, जिससे कि खुली हवामें पैदा होनेवाला आजादी और उत्तरदायी शासनका वृक्ष कभी पनप न सकेगा, अपनी स्वीकृति देनेकी अपेक्षा कांग्रेस चाहे कितने ही वर्ष जंगलमें भटकना स्वीकार कर लेगी। अछूतोंको अल्पसंख्यक जाति मानने और विशेष

प्रतिनिधित्वके साथ उन्हें पृथक् निर्वाचनका अधिकार देनेके डा० अम्बेडकरके दावेका विरोध करते हुए गांधीजीने कहा था कि—"अन्य अल्पसंख्यक जातियोंके भावोंको तो मैं समझ सकता हूं, लेकिन अछूतोंकी ओरसे पेश किया गया दावा तो मेरे लिये सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यताका कलंक निरन्तर रहेगा। हम नहीं चाहते कि अछूतोंका एक पृथक् जातिके रूपमें वर्गीकरण किया जाय। सिख सदैवके लिये सिख, मुसलमान हमेशाके लिये मुसलमान और ईसाई हमेशाके लिये ईसाई रह सकते हैं, लेकिन क्या अछूत भी हमेशाके लिये अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहेगी, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक पसन्द करूंगा कि हिन्दू धर्म ही डूब जाय। जो लोग अछूतोंके राजनीतिक अधिकारोंकी बात करते हैं वे भारतको नहीं जानते और हिन्दू जातिका निर्माण किस प्रकार हुआ है यह भी नहीं जानते। इस लिये मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूंगा।" गोलमेज परिषद्में गांधीजीने अल्पसंख्यक जातियोंके समक्ष कोरा चेक तक पेश किया और साफ शब्दोंमें यह ऐलान किया कि साम्प्रदायिक नेता जो चाहें लिख दें, कांग्रेस उसे मंजूर कर लेगी बशर्ते कि भारतको आजाद करनेमें वे सहायक हों। लेकिन किसी साम्प्रदायिक प्रतिनिधिने इस शर्तके साथ गांधीजीके चेकका स्वीकार नहीं किया और गांधीजीने महज एक शर्त रखकर साम्प्रदायिक प्रतिनिधियों तथा उनकी पीठ पर हाथ रखनेवाले ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंकी सारी पोल खोल दुनियाके पेशे नजर कर दी।

गोलमेज परिषद्में साम्प्रदायिक समस्या हल नहीं हो सकी। अल्पसंख्यक समितिका सारा परिश्रम बेकार गया। अंग्रेज राजनीतिक यही चाहते भी थे। अन्तमें प्रधानमन्त्री मि० रैमजे मैकडानल्डने इस विषयपर एक सादा सवाल किया। उन्होंने कहा कि—"क्या आप, आपसमें प्रत्येक सदस्य साम्प्रदायिक समस्याका

हल निकालने और उससे अपनेको बाधित माननेके लिये मेरे पास प्रार्थना-पत्र भेजेंगे ? हालांकि कमेटीके प्रत्येक सदस्य प्रधान मन्त्रीको पञ्च माननेके लिये तैयार नहीं थे, फिर भी अगस्त १९३२ में प्रधान मन्त्रीने सम्राट्की सरकार की ओरसे 'साम्प्रदायिक निर्णय' का ऐलान किया। उस समय यह सवाल उठा था कि क्या श्वेत पत्र (White paper) में सन्निहित अन्य प्रस्तावोंके साथ यह भी सरकारका प्रस्ताव है या यह प्रधान मन्त्रीका निर्णय ? गोलमेज परिषद् के सब सदस्योंने इस किस्मके प्रार्थना-पत्रपर हस्ताक्षर नहीं किये थे इसलिये पंचकी हैसियतसे निर्णय दिया ही नहीं जा सकता था और इसलिये यह फैसला भी एक प्रस्ताव पत्र था। मगर ब्रिटिश सरकारने इस फैसलेको ब्रह्म वाक्य माननेके लिये बाध्य किया—भारतीयोंके गले इसे जबरन मढ़ा गया।

साम्प्रदायिक निर्णयके ऐलानमें कहा गया था कि—सम्राट्की सरकारकी ओरसे, गोलमेज परिषद्के दूसरे अधिवेशनके अन्तमें १ दिसम्बरको प्रधानमंत्री ने जो घोषणा की थी और जिसकी ताईद उसके बाद ही पार्लमेण्टके दोनों हाउसोंने भी कर दी थी, उसमें यह स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि भारतवर्षमें रहनेवाली विविध जातियां साम्प्रदायिक प्रश्नोंपर किसी ऐसे समझौते पर नहीं पहुंच सकीं जो सब दलोंको मान्य हो, जिसे कि हल करनेमें परिषद् असफल रही है, तो सम्राट्की सरकारका यह दृढ़ निश्चय है कि इस वजहसे भारतकी वैधानिक प्रगति नहीं रुकनी चाहिये और इस बाधाको दूर करनेके लिये वह स्वयं एक भारतीय योजना तैयार करके उसे लागू करेगी।........ इसलिये सम्राट्की सरकारने यह निश्चय किया है कि भारतीय शासन विधान सम्बन्धी प्रस्तावोंमें, जो कि यथासमय पार्लमेण्टके सामने पेश किये जायंगे वह ऐसी धाराएं रखेगी जिससे साम्प्रदायिक योजनापर अमल हो सके।

गोलमेजके अल्पसंख्यक समझौते और प्रधान मन्त्रीके साम्प्रदायिक निर्णयको विभाजित करके व्यवस्थापिका सभाओंमें दी गई सीटोंका अगर तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि सरकारने कितनी जबर्दस्त कूटनीति एवं पक्षपातसे काम लिया है तथा साम्प्रदायिक समस्याको सुलझानेके नामपर उसे कितना पेचीदा और उलझनपूर्ण बना दिया है। अल्पसंख्यक समझौतेमें विभिन्न वर्गोंको प्राप्त होनेवाली सीटोंको मद्देनजर रखते हुए हरेक जातिके कुल सदस्योंकी संख्यायें निश्चित कर दी गयी थीं। किन्तु सरकारी निर्णयमें विशेष वर्गोंको अलग किया गया है जिससे विशेष वर्गोंके द्वारा विभिन्न जातियोंकी तुलनात्मक रूपमें मिली हुई संख्यामें और वृद्धि भी हो सकती है।

तथाकथित साम्प्रदायिक निर्णयके प्रकाशित होनेपर उसका प्रचण्ड विरोध किया गया और सम्पूर्ण भारतने एक स्वरसे कुछ संकीर्ण मुसलिम साम्प्रदायिक नेताओंके सिवा, उसके खिलाफ आवाज बुलन्द की। मुसलमानोंको खुश रखने के ख्यालसे कांग्रेसने 'न स्वीकार, न अस्वीकार' (Neither Acception Nor Rejection) की नीति अख्तियार की। इसके सिवा कांग्रेसके सामने दूसरा मार्ग भी उस समय नहीं था। दूसरी बात यह थी कि कांग्रेस तो भारतीय शासन विधानकी समूची योजना का ही विरोध कर रही थी जिसका कि साम्प्रदायिक निर्णय एक अङ्ग था। इसलिये कांग्रेसने केवल साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध करनेके लिये आन्दोलनमें शामिल होना उचित नहीं समझा। इस मसलेको लेकर पं० मदन मोहन मालवीय, श्री अणे और कुछ हिन्दू नेताओंके सहयोगसे, कांग्रेस राष्ट्रीय दलके नामसे एक अलग संस्था खड़ी की गई जिसे बंगाल और पंजाबमें बड़ी सफलता मिली। साम्प्रदायिक निर्णयमें बंगाल और पंजाबके हिन्दुओंके साथ बेहद बेइन्साफी भी की गयी थी। सिखोंके

साथ भी घोर अन्याय हुआ है। २६ दिसम्बर १९३५ ई० को मोगामें खालसा दरबारके अध्यक्षकी हैसियतसे भाषण करते हुये सरदार मंगलसिंहने साम्प्रदायिक निर्णयका घोर विरोध किया था और सिखोंसे उसके खिलाफ संगठित आवाज बुलन्द करनेकी अपील की थी। उन्होंने कहा था कि "संसारके वैधानिक इतिहासमें बहुमतके लिये सीटोंका संरक्षण तो कहीं नहीं देखा गया। इस विचित्र थ्योरीका समर्थन किसी भी तरह नहीं किया जा सकता। सिखोंके साथ घोर अन्याय किया गया है। युक्त प्रान्तमें मुसलमानोंकी आबादी १४ फी सदी है लेकिन उन्हें ३० फी सदी सीटें दी गयी हैं। पंजाबमें सिखोंकी आबादी १३ फी सदी है मगर उन्हें १९ फी सदी से भी कम प्रतिनिधित्व दिया गया है। बिहारमें मुसलमान १० फी सदी हैं मगर सीटें २५ फी सदी दी गयी हैं। मद्रासमें मुसलमानोंकी संख्या ६ फी सदी है किन्तु प्रतिनिधित्व १८ फी सदी दिया गया है। यह सौतेली मां का-सा वर्ताव सिखोंको उत्तेजित करनेवाला है।"

नरमदलके नेताओं और राष्ट्रीय विचारके प्रमुख मुसलमानोंने भी साम्प्रदायिक निर्णय और पृथक निर्वाचनका घोर विरोध किया। 'लीडर' के यशस्वी सम्पादक श्री (अब सर) सी० वाई० चिन्तामणि साम्प्रदायिक निर्णय के प्रमुख विरोधियोंमें थे। सर अली इमाम, डा० एम० ए० अन्सारी, मि० टी० के० शेरवानी, डा० महमूद, मौलाना अबुलकलाम आजाद, मि० मलिक बरकत अली, मि० तामिजुद्दीन खां, और मि० आसफ अली आदि राष्ट्रीय विचार रखनेवाले मुस्लिम नेताओंने भी साम्प्रदायिक निर्णय और पृथक् निर्वाचनको अराष्ट्रीय तथा गणतन्त्र विरोधी बताया। मगर सरकारने भारतकी आवाज़पर कोई ध्यान नहीं दिया और फूट डाल कर शासन करनेके सिद्धान्तपर चलकर उसने साम्प्रदायिक फैसलेको हमपर, हमारी दिली मंसाके खिलाफ,

जबरन लाद ही तो दिया। भारतवर्षमें ब्रिटिश साम्राज्यवादकी जड़ मजबूत बनाये रखनेमें यह एक बड़ा शक्तिशाली साधन साबित हो रहा है।

साम्प्रदायिक निर्वाचनका आश्वासन सर्व प्रथम लार्ड मिण्टोने हिज हाइनेस सर आगा खांको १९०६ ई० में दिया था। १९१६ में लखनऊ पैक्ट किया गया और भारतकी दोनों बड़ी जातियोंने आपसमें मिलकर साम्प्रदायिक निर्वाचनके सिद्धान्तपर सीटोंका बटवारा कर लिया और उस समय यह समस्या एक तरहसे हल हो गई। लेकिन मांटेग्यू चेम्स फोर्ड शासन सुधारकी रिपोर्टमें पृथक् निर्वाचनकी निन्दा की गई। उक्त रिपोर्टके पेरा २३१ में पृथक् निर्वाचन को A very Serious hindrance to the development of the self governing principle 'स्वायत्त-शासनके सिद्धान्तके विकासमें जबर्दस्त बाधक' करार दिया गया। उक्त रिपोर्टमें यह भी कहा गया कि जिन प्रान्तोंमें मुसलमान बहुमतमें हैं वहां पृथक् प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तानुसार कार्य करनेका कोई वाजिब कारण नहीं हो सकता। मताधिकार समितिने भी इस विचारका समर्थन किया और केन्द्रीय असेम्बलीकी निर्वाचित सीटोंमें मुसलमानोंको २६ फी सदी सीटें दी गईं जबकि भारतकी कुल आबादीमें उनकी संख्या २४ फी सदी है। १९३४ ई० की १३ मार्च को डा० एम० ए० अन्सारीने अपने एक वक्तव्यमें कहा था कि—"साम्प्रदायिक निर्णय तो जान बूझकर रचे गये कुचक्रका नतीजा है। एक खास किस्म की गोलमेज परिषदमें ऐसे ही प्रतिनिधियोंको बुलाया गया था जो कि समझौता कभी होने न दें और फिर सरकारको अपनी योजना लादनेका का मौका मिले। मौलाना अबुल कलाम आजादने साम्प्रदायिक निर्णयपर रायजनी करते हुये कहा था कि—भारतकी राष्ट्रीयताके लिये प्रधानमन्त्रीका साम्प्रदायिक निर्णय बड़ा खतरनाक है। इसके जरिये एक जातिको दूसरी जातिके खिलाफ खड़ा किया गया है। यूरोपियनोंके

सिवा इससे और किसी दूसरी जातिको कुछ फायदा नहीं पहुंच सकता। गोल-मेज परिषद्में शामिल होनेके लिये सरकारने ऐसे ही दर्जेके साम्प्रदायिक नेताओंको चुना है जो समझौतेको नामुमकिन बनानेपर तुले हुए थे ताकि सरकारको दुनियाके सामने यह ऐलान करनेका मौका मिले कि हिन्दुस्तानी अपने छोटे-मोटे झगड़ोंको भी तय नहीं कर सकते लिहाजा वे आजादी पानेके मुस्तहक नहीं हैं—आजाद होनेके काबिल नहीं।"

हिन्दुस्तानके अल्पमत और बहुमतका सवाल सिर्फ हिन्दुओं और मुसलमानोंतक ही सीमित नहीं है। सरकारने और भी कई अल्पमतोंका सृजन किया है। सिख, पारसी, दलित वर्ग, यूरोपियन, भारतीय ईसाई और एंग्लो-इण्डियन भी अल्पमतमें हैं और सरकारको इनके भी हितों तथा स्वार्थोंकी रक्षा करनेकी फिक्र है। सरकारने दलित जातियोंको हिन्दुओंसे अलग करनेका कुचक्र रचा था और गोलमेज-परिषद्में डा० अम्बेदकरको अछूतोंका नेता माना था। लेकिन महात्मा गांधीने गोलमेज परिषद्की अल्पसंख्यक समिति-की अंतिम बैठकमें, १३ नवम्बर १९३१ ई०को साफ शब्दोंमें कहा था कि,— 'सारे संसारके राज्यके बदले भी मैं उनके (अछूतोंके) अधिकारोंको तो न छोड़ूंगा। मैं अपने उत्तरदायित्वका पूरा ध्यान रखता हूं, अब मैं यह कहता हूं कि डा० अम्बेदकर जब सारे भारतके अछूतोंके नामपर बोलना चाहते हैं। तब उनका यह दावा उचित नहीं है। इससे हिन्दू धर्ममें जो विभाग हो जायेंगे वह मैं जरा भी संतोषके साथ देख नहीं सकता।" सरकारने दलित जातियों या अस्पृश्योंके लिये साम्प्रदायिक निर्णयमें पृथक् निर्वाचनका सिद्धान्त रखा था। गांधीजी यरवदा जेलमें कैद थे। जेलमें ही उन्होंने दलित जातियोंके पृथक् निर्वाचनके खिलाफ आमरण उपवास आरम्भ किया जो भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनमें 'एपिक फास्ट' के नामसे मशहूर रहेगा। सारा

देश भयभीत, अवसन्न और स्तब्ध हो गया। उनके प्राण बचानेके लिये देश चिन्तित था। गांधीजीका अनशन भंग करानेके लिये पूना पेक्ट किया गया। देशके नेताओंने अथक परिश्रम करके एक योजना तैयार की जो अछूत नेताओंको मान्य हो गई और गांधीजीने अनशन भंग कर दिया। दलित जातियोंने पृथक् निर्वाचनका अधिकार त्याग दिया और आम हिन्दू निर्वाचनोंसे ही संतोष कर लिया। उच्च जातियोंके हिन्दुओंने यह महत्वपूर्ण संरक्षण प्रदान किये। उनमें एक संरक्षण यह है कि सरकारी निर्णयके अनुसार आम निर्वाचनमें जितनी जगहें दी गयी हैं उनमेंसे १४८ जगहें दलित जातियोंको दी जायं। दूसरा यह है कि हरेक सुरक्षित जगहके लिये दलित जातियां चार उम्मेदवार चुनें और आम निर्वाचनमें उनमेंसे एकको चुन लिया जाय। पूरा समझौता उस समय तक कायम रहे जबतक सबकी सलाहसे उसमें परिवर्तन न किया जाय। ब्रिटिश सरकारने पूना पैक्टको उस अंश तक स्वीकार कर लिया जिस अंशतक उसका प्रधान मन्त्रीके निश्चयसे सम्बन्ध था।

इन सारी घटनाओंके बावजूद भी अछूतोंके अल्पमतकी समस्या आज भी मौजूद है। डा० अम्बेदकर अब भी गला फाड़-फाड़कर चिल्लाया करते हैं कि हिन्दुओंसे अछूतोंको भयङ्कर खतरा है। जिस तरह मि० जिन्ना मुसलमानोंके अल्पमतकी समस्या पेश करते हैं उसी तरह डा० अम्बेदकर अछूतोंकी अल्पसंख्याका सवाल उठाते रहते हैं। कांग्रेसी मंत्रिमंडलोंके इस्तीफे दे देनेपर मि० जिन्नाने मुसलमानोंको जब 'मुक्ति दिवस' (Deliverence Day) मनानेको कहा और मनाया तो डा० अम्बेदकर भी इस 'मुक्ति दिवस'में शामिल थे और अछूतोंसे अपील की थी कि वे भी यह दिवस मनायें। 'मुक्ति दिवस' इस नींवपर मनाया गया था कि कांग्रेसी मंत्रिमंडलोंके इस्तीफेसे उस जुल्मका अन्त हो गया जो अल्पसंख्यक मुसलमानोंपर हो रहा था। इससे साम्प्रदायिक भावनाको

काफी उत्तेजना मिली। डा० अम्बेदकर मि० जिन्नाको भारतकी अल्पसंख्यक जातियोंका रहनुमा कहते हैं और उनके पीछे-पीछे चलना पसन्द करते हैं। इन्हीं डा० अम्बेदकरने १३ अक्टूबर १९३५ ई० को नासिक जिलेके ईओला नामक स्थानपर 'बम्बई प्रान्तीय दलितवर्ग सम्मेलन' के अध्यक्षकी हैसियतसे भाषण देते हुए अछूतोंको हिन्दू धर्मसे निकलकर दूसरा धर्म स्वीकार कर लेनेकी सलाह दी थी। उन्होंने कहा था कि—'हमें कोई ऐसा धर्म ग्रहण करना चाहिये जो हमारे साथ समानताका बर्ताव करे। अब हमें अपनी भूल सुधारनी चाहिये। यह हमारा दुर्भाग्य था कि हम अस्पृश्यताका कलङ्क लेकर पैदा हुए हैं। लेकिन हम हिन्दू रहकर नहीं मरेंगे क्योंकि यह हमारे अधिकारमें है।" सम्मेलनमें लगभग दस हजार अछूत उपस्थित थे। डा० अम्बेदकरकी इस आत्मघातक सलाहसे सारा हिन्दू समाज थर्रा उठा था। अखिल भारतीय दलित वर्ग एसोशियेशनके प्रेसीडेंट राय बहादुर एम० सी० राजा एम० एल० ए० ने १२ नवम्बर १९३५ ई० को एक वक्तव्य निकालकर डा० अम्बेदकरके इस सुझावका विरोध किया था। अन्य अछूत नेताओंने भी डा० अम्बेदकरका विरोध किया और सौभाग्यवश उनका सुझाव असली जामा न पहन सका।

ब्रिटिश सरकार इन्हीं अल्पसंख्यक जातियोंका सवाल सामने खड़ा करके भारतको स्वाधीनताके अयोग्य बताती है। भारत सचिव मि० एमरीने भारतके राजनीतिक लक्ष्यकी पूर्तिमें जिन बाधाओंका उल्लेख किया है वे ये हैं— "सर्व प्रथम विशाल मुस्लिम जाति आती है—नौ करोड़, उस छोटे महाद्वीपके उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्वमें बहुमतके रूपमें और समस्त भारतके कोने-कोनेमें फैली हुई। फिर आते हैं अछूत, जो ऐसा समझते हैं कि वे प्रधान हिन्दू जातिसे अलग हैं जिसका प्रतिनिधित्व कांग्रेस करती है। देशी नरेशोंका

एक दूसरा ही दल है जो कांग्रेसको अपने अस्तित्वके लिये खतरनाक समझते हैं।" जहांतक अछूतोंका सम्बन्ध है 'अ० भा० दलित वर्ग सङ्घ' के सेक्रेटरी श्री रामप्रसाद जयसवारने भारतसचिवको बड़ा करारा उत्तर दिया है। उन्होंने अपने एक वक्तव्यमें मि० एमरीके कथनका जिक्र करते हुए कहा है कि—"यह याद रखना चाहिये कि दलितवर्गका धर्म, उसकी संस्कृति और भाषा वही है जो उच्चवर्ग की है। उससे भिन्न कुछ भी नहीं। यद्यपि दलित जातियोंके प्रति अन्याय हुए हैं किन्तु दलितवर्ग विशाल हिन्दू जातिसे कभी अलग नहीं रहा है। ब्रिटिश सरकार गत शताब्दियोंमें जो नहीं कर सकी उसे कांग्रेसने सिर्फ थोड़े समयके भीतर, केवल २॥ वर्षमें कर दिखाया है। अतएव, मौजूदा परिस्थितिमें सम्राट्‌की सरकारने अछूतोंके प्रति अचानक प्रेम दिखानेका जो दावा किया है वह दरअसल बड़ा कौतूहलपूर्ण है। मि० एमरी को हमारी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। हम दो मोर्चोंपर लड़ेंगे। एक तरफ हम ब्रिटिश साम्राज्यवादका मुकाबला करेंगे और दूसरी तरफ हिन्दुओंकी कट्टरतासे लोहा लेंगे। हम अपने पैरोंपर खड़ा होना सीख गये हैं। मि० एमरीको समझ रखना चाहिये कि वे अछूतोंको मुस्लिम लीगियों, नरेशों तथा ऐसे प्रतिक्रियागामी दलोंमें शामिल न करें जो देशकी स्वाधीनताके मार्गमें बाधा डाल रहे हैं।" लेकिन अफसोस तो यह है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इन चेतावनियोंके बावजूद भी अल्पसंख्यक जातियोंके अधिकारोंकी रक्षा करनेके लिये अपनेको ईश्वरका भेजा हुआ देवदूत समझते हैं।

भारतीय ईसाई भी साम्प्रदायिक भेदके कारण अपनेको एक अलग जमात समझते हैं। ईसाई जनतामें इस भावको भड़कानेकी कोशिश जारी है। ईसाई मजहबका इतिहास इस बातका सबूत है कि ईसाइयोंने सदासे ही अपने मुल्ककी आजादीकी लड़ाईमें सबसे आगे कदम बढ़ाया है। चीनके ईसाइयोंने

कोई ज़िद नहीं की और न उन्होंने यह कहा कि जबतक उनकी ये-ये मांगें पूरी न की जायेंगी तबतक जापानके खिलाफ वे शस्त्र न उठायेंगे। इसी तरह जापानके ईसाइयोंने भी अपनी देशभक्तिका सौदा करना अपने सिद्धान्तके खिलाफ समझा। मिश्रके काप्टोंका भी यही दृष्टिकोण है। फिर इसकी क्या वजह है कि भारतके ईसाई अपनेको एक अलग जातिका समझें और धर्मके नामपर बगावतके नेता बने रहें जब अन्य देशोंमें उन्हींके भाई और हम-मजहब अपने देशके लिये हर तरहसे कुर्बानी करनेको तैयार रहते हों। लेकिन इस अन्धकारमें भी प्रकाशकी एक क्षीण रेखा है। अखिल भारतीय ईसाई कानफ्रेंसके अध्यक्ष डा० एच० सी० मुखर्जी एम० ए०, पी० एच० डी०, एम० एल० ए० (बङ्गाल) साम्प्रदायिकता और पृथक् निर्वाचनके सख्त विरोधी हैं। वे अल्पमतके नामपर भारतीय ईसाइयोंको देशकी आजादीके मार्गमें बाधक नहीं होने देना चाहते। यही वजह है कि वे अपने सङ्गठनकी ओरसे हमेशा कांग्रेसके समर्थक रहे हैं और स्वाधीनताके सङ्घर्षमें भारतीय ईसाइयोंको सहयोग देनेकी सलाह देते रहे हैं।

एंग्लो-इण्डियन अल्पमतके नामपर अपना राग अलग ही अलापा करते हैं। व्यवस्थापिका सभाओंमें एंग्लो-इण्डियन सदस्योंका निर्वाचन पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रोंके द्वारा होता है। भारतकी एंग्लो-इण्डियन जाति धर्म जाति अथवा संस्कृतिके विचारसे अल्पमतमें नहीं है। एंग्लो-इण्डियन तो शेष भारतसे ही अपनेको अलग समझते हैं और अपना अलग राष्ट्र मानते हैं। भारतीय अल्पमतोंकी अपेक्षा यह जाति गत यूरोपीय महायुद्धके पूर्वकालीन यूरोपियन अल्पमतोंसे मिलती-जुलती है। सरकारकी ओरसे एंग्लो-इण्डियनों को सरकारी नौकरियोंमें तरजीह भी मिलती है और रेलवे, पोस्ट आफिस तथा अन्य सरकारी एवं अर्द्धसरकारी मुहकमोंमें वे काफी संख्यामें नौकरी पाते

हैं। प्रस्तावित संघी-असेम्बलीमें ब्रिटिश भारतकी कुल २५० सीटोंमेंसे एंग्लो-इण्डियनोंको ४ सीटें मिली हुई हैं जो कि १½ प्रतिशत है। प्रान्तीय असेम्बलियोंमें उन्हें ¾ सीटें प्राप्त हैं और कुल भारतकी आबादीमें एंग्लो-इण्डियन १ फी सदी हैं।

भारतके यूरोपियन धर्म, जाति तथा सम्प्रदायके लिहाजसे ही नहीं बल्कि आर्थिक दृष्टिसे भी अल्पमत हैं। इसलिये यूरोपियनोंके आर्थिक हितोंकी रक्षाके लिये उन्हें बहुत ज्यादा प्रतिनिधित्व और संरक्षण प्राप्त है। प्रतिशत आबादीके हिसाबसे यदि विचार किया जाय तो यूरोपियनोंको कई गुना अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया है। यूरोपियन तो हिन्दुस्तानमें एक प्रतिशतसे भी बहुत कम हैं मगर संघी असेम्बलीमें उन्हें ५½ प्रतिशत तथा प्रान्तीय असेम्बलियोंमें ३ प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया गया है। यह एक बड़ा अन्यायपूर्ण और गैरवाजिब बटवारा है।

सिख पञ्जाबमें प्रबल अल्पमतमें और अन्य प्रान्तोंमें मामूली अल्पमतमें हैं। सिखोंको काफी संरक्षणके साथ पृथक् प्रतिनिधित्व दिया गया है। संघी असेम्बलीमें ब्रिटिश भारतकी कुल २५० सीटोंमें सिखोंको ६ सीटें मिली हैं या २½ प्रतिशत। पञ्जाब प्रान्तीय असेम्बलीकी कुल १७५ सीटोंमें सिखोंको ३१ सीटें दी गयी हैं। पञ्जाबकी आबादीमें सिखोंकी संख्या १३ फी सदी हैं मगर सीटें १८ फी सदी मिली हैं। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तमें सिख आबादीके हिसाबसे २ फी सदी हैं किन्तु प्रतिनिधित्व ६ फी सदी मिला है।

भारतमें पारसी ही ऐसी एक जाति है जो पृथक् प्रतिनिधित्वके लिये कभी लड़ी-झगड़ी नहीं। यह जाति काफी उन्नतिशील और धनी है। भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनमें इस जातिने बहुत बड़ा हिस्सा लिया है। कोई यह नहीं बता सकता कि इस जातिको बहुमतसे कभी कोई खतरा रहा

है। भारतको केवल साम्प्रदायिक हिस्सोंमें बांटकर ही चैन नहीं लिया गया है। यहां विभिन्न 'स्वार्थों' (interests) को भी पृथक् प्रतिनिधित्व दिया गया है जैसे कि जमींदार, व्यापारी, कारखानेदार, खानोंके मालिक, मजदूर और विश्वविद्यालय आदि। इन वर्गोंके प्रतिनिधिमें अपने-अपने वर्गके स्वार्थों-की रक्षाके लिये लड़ा करते हैं। भारतमें प्रतिनिधित्वका बटवारा इस ढङ्गसे किया गया है कि अगर अल्पमत जातियोंके एवं वर्गोंके सभी प्रतिनिधि आपस में किसी प्रश्नपर मिल जायं तो बहुमतके प्रतिनिधियोंको अल्पमतमें परिणत होते देर न लगे।

अल्पसंख्यकोंके सवालने आजकल मध्ययुगके धार्मिक झगड़ोंका—सा भयं-कर रूप धारण कर लिया है। हर देशमें कई तरहकी जातियां होती हैं और उनमें भाषा, धर्म तथा संस्कृति सम्बन्धी भेद भी होते हैं। पर वे सभी एक राष्ट्रीयताके सूत्रमें बंधी रह सकती हैं। लेकिन जहां एक प्रबल राष्ट्रको अपना स्वार्थ सिद्ध करना हो वहां वह राष्ट्रीय बन्धनके धागोंको तोड़ देता है और फूटका जहरीला बीज बो देता है। भारत आज अल्पताके संकीर्ण एवं संक्रामक रोगसे—माइनारिटी कम्प्लेक्ससे बुरी तरह पीड़ित है और हमारे शासक इसका लाभ उठा रहे हैं। आयर्लैंडका आल्स्टर प्रान्त, शेष आयरलेण्डसे इसी तरह अलग हुआ। आस्ट्रिया और जेकोस्लोवेकियाके जर्मन अल्पसंख्यकों के सवाल पर नाजी नेता हर हिटलरने इन देशोंकी स्वतन्त्रता नष्ट कर दी। यूक्रेन, श्वेत रशिया, कारमेथियन आदिके झगड़े और बालकन राज्योंकी कलहका कारण भी यही अल्पसंख्यकोंका झगड़ा है। मि० जिन्ना भारतमें मुसलमानोंका आल्स्टर प्रान्त बनाना चाहते हैं। दलितों और शेष हिन्दुओंमें मनमाने तौरपर भेद पैदा कर दिया गया है उनमें धार्मिक और सांस्कृतिक भेद तो है ही नहीं। फिर भी सरकार उन्हें अल्पसंख्यकोंमें मानती है और शेष

हिन्दुओंको बहुमत वाली कौम कहा जाता है। बहुसंख्यकोंकी उदारता धमकीसे नहीं पाई जा सकती। यह तो पारस्परिक प्रेम और सद्भावका सौदा है। एक तीसरी पार्टीके भड़काने या बहकावेमें आकर अल्पमत अगर बहुमत पर खामख्वाह शक न करने लग जाय और उसपर झूठे दोषारोपण न करे तो कोई वजह नहीं है कि बहुमत उदारताके साथ अल्पमतसे पेश न आये। वायसराय अपनी घोषणामें कहते हैं कि अंग्रेज भारतकी सुख-शांतिकी जिम्मे-दारीको शासनकी किसी ऐसी प्रणालीको देनेका विचार नहीं कर सकते जिसकी सत्ता और अधिकार भारतीय राष्ट्रीय जीवनके बड़े और शक्तिशाली तत्व द्वारा इन्कार किये जाते हों। यानी अंग्रेज भारतके उस दलको शासनका अधिकार सौंपना नहीं चाहते जिसमें देशकी बहुसंख्यक जनताका विश्वास है और जिसे वह बहुमतसे शासनकी बागडोर सौंपती है। अंग्रेजोंकी इस अजीब गरीब गणतन्त्रमूलकता पर आश्चर्य होता है। दुर्भाग्यसे ये तत्व, जिनकी रक्षा करनेका ठेका अंग्रेजी हुकूमतने ले रखा है, इस देशमें हमेशा मौजूद रहेंगे और हर देशमें हर समय मौजूद रहते हैं। तब तो भारतमें पूर्ण उत्तरदायी और स्वतन्त्र सरकारकी स्थापना कभी हो ही नहीं सकती। न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेंगी। यह कहना देशकी प्रगतिमें बाधक होना है, रोड़े अटकाना है कि पहले साम्प्रदायिक समस्याको हल कर लो, तब आजादीकी ओर बढ़ो। इसके जवाबमें मौलाना अबुल कलाम आजादने बिलकुल ठीक कहा है कि—"आजादी हासिल करनेके लिये पहले साम्प्रदायिक समस्याका हल होना ही जरूरी नहीं है। देशके आजाद होते ही साम्प्रदायिक समस्या खुदबखुद हल हो जायगी। यह समस्या आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नोंपर निर्भर है।"

७

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

भारतवर्षमें ब्रिटिश शासनको अपनी अमूल्य देनोंके लिये अन्य अनेक बातोंके सिवा इस बातका भी घमण्ड है कि उसने हिन्दुस्तानमें गणतन्त्रके सिद्धान्तोंका बीजारोपण किया है। अंग्रेज राजनीतिज्ञोंका कहना है कि ब्रिटिश शासनके पहले हिन्दुस्तानमें गणतन्त्र नहीं था ; हालांकि उनका कथन बिलकुल गलत है। अशोक और चन्द्रगुप्त कालीन भारतवर्षमें गणतन्त्रका काफी विकास इस देशमें हो चुका था। बौद्धकालीन इतिहास और कौटिल्यका अर्थशास्त्र इसके प्रमाण स्वरूप पेश किये जा सकते हैं। वैशालीकी गणतन्त्रमूलक शासन पद्धतिको कोई इतिहासकार भूल नहीं सकता। इसके सिवा और भी अनेक अवसरों पर, प्राचीन भारतवर्षमें गणतन्त्रके चिन्ह पाये जाते हैं। अंग्रेजोंके इस दावेको हम नहीं मानते कि भारतवर्षमें गणतन्त्रके जनक वे ही हैं। सच तो यह है कि अंग्रेजी शासनकालमें गणतन्त्रके नाम पर उसकी जड़को हिलाया गया है। भारतकी प्रतिनिधिमूलक संस्थाओंमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वका सिद्धान्त कायम करके गणतन्त्रके मौलिक सिद्धान्त पर कुठाराघात किया गया

है। अंग्रेज कूटनीतिज्ञोंने, अंग्रेजोंके निहित स्वार्थ (Vested interest) को मद्देनजर रखकर यह महसूस किया कि पृथक् निर्वाचनकी जगह हिन्दुस्तानमें अगर संयुक्त निर्वाचनकी प्रणाली लागू होगी तो कुछ दिनोंके भीतर ही भारतवर्षमें राष्ट्रीयताकी ऐसी पुख्ता इमारत खड़ी हो जायगी कि उसमें अंग्रेजोंका गुजर हो सकना असंभव हो जायगा। यही वजह है कि इस देशमें आरंभसे ही साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी घातक प्रथा जारी की गयी जो हमारे राष्ट्रीय विकास एवं स्वाधीनताके मार्गमें जबर्दस्त रोड़ा साबित हो रही है।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वका प्रश्न बिलकुल नया नहीं है। १८८८ में सर आकलेण्ड कालविन जब युक्तप्रान्तके लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर थे तबसे ही इसकी बुनियाद पड़ चुकी है। उस समय यह दिखानेकी कोशिश की गयी थी कि मुसलमान कांग्रेसके विरोधी हैं। कांग्रेसके अधिवेशनोंकी सफलताने नौकरशाहीके मनमें हलचल मचा दी थी। १८८८ में कांग्रेसका जो अधिवेशन इलाहाबादमें मि० जार्ज यूलके सभापतित्वमें हुआ उसमें लखनऊके सुन्नियोंके शम्सुलउल्मासे एक फतवा हासिल करके शेख रजा हुसेनखांने यह ऐलान किया था कि—"मुसलमान नहीं, बल्कि उनके मालिक—सरकारी हुक्काम—हैं जो कांग्रेसके मुखालिफ हैं। मुसलमान कांग्रेसके विरोधी नहीं हैं। वे कांग्रेसके साथ हैं।" लार्ड कर्जनके उत्तराधिकारी लार्ड मिण्टो इस बातको भली भांति समझते थे कि हिन्दू और मुसलमान अगर कांग्रेसमें मिल जायेंगे तो हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंकी हुकूमत ज्यादा दिन नहीं टिक सकेगी। इन्हीं दिनों भारतमें मामूली तौर पर शासन सुधार करनेके लिये सरकारने अपना इरादा जाहिर किया। इस सम्बन्धमें एक सर्कूलर निकाला गया था जिसमें कहा गया था कि सरकार ऐसे वर्गोंको विशेषाधिकार एवं संरक्षण देकर राजनीतिमें लाना चाहती है जो हर प्रकारके परिवर्तनसे घबड़ाते हैं और जिनकी यह कोशिश रहती है

कि वर्तमान परिस्थिति सदाके लिये अपरिवर्तित रूपसे कायम रहे। मुसलमान प्रायः कांग्रेससे अलग रखे गये और वे राजभक्त समझे जाते थे। मुसलमानोंमें यह प्रचार किया गया कि वे इस मुल्कके रहनेवाले नहीं हैं। वे विदेशोंसे आये हुए विजेता मुसलमानोंकी औलाद हैं। सर सैयद अहमदखां और उनके साथियोंने मुसलमानोंकी एक अलग जमात बनाने और अंग्रेजोंके साथ दोस्तीका रिश्ता कायम करनेके लिये मजहबका इस्तेमाल पूरी तरहसे किया। सर सैयद अहमदने 'दीन' की दुहाई दी और वे सफल रहे। इसी 'दीन' के नाम पर मि० मुहम्मदअली जिन्ना मुसलमानोंके कायदेआजम बन बैठे हैं और मुस्लिम लीग भारतकी एकता और आजादीका बलिदान करनेपर निधड़क उतारू है। सर सैयद अहमद अंग्रेजी शासनके वफादार एक प्रभावशाली और धनी मुसलमान थे। उन्हें मुसलमानोंकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थितिकी कोई परवाह नहीं थी। उन्होंने मजहबके नाम पर, हिन्दुओंसे भयभीत होकर और अंग्रेज कूटनीतिज्ञोंके मायाजालमें फँसकर मुसलमानोंको अंग्रेजोंकी अधीनता स्वीकार करनेकी नसीहत दी। अंग्रेजोंके सम्बन्धमें सर सैयद अहमदने एक जगह फरमाया था:—

"इङ्गलिश नेशन हमारे मफतूह (पराजित) मुल्कमें आई, मगर मिस्ल एक दोस्तके, न कि बतौर एक दुश्मनके। हमारी मनोकामना है कि हिन्दुस्तानमें इङ्गलिश हुकूमत सिर्फ एक जमान-ए-दराज तक ही नहीं, बल्कि इटर्नल (अनन्तकालीन) होना चाहिये। हमारी यह चाह केवल इङ्गलिश कौमके लिये नहीं बल्कि अपने मुल्कके लिये है। हमारी यह आरजू अंग्रेजों की भलाई या उनकी खुशामदकी वजहसे नहीं है बल्कि अपने मुल्ककी भलाई व बेहतरीके लिये है। पस, कोई वजह नहीं कि हममें और उनमें सिंपेथी (हमदर्दी) न हो। सिंपेथीसे मेरी मुराद पोलिटिकल सिंपेथी (राजनीतिक

सहानुभूति) नहीं है। पोलिटिकल सिंपेथी तांबेके वर्तनपर चांदीके मुलम्मेसे ज्यादा कुछ वकत नहीं रखती। उसका असर फरीकके दिलोंमें कुछ नहीं होता। एक फरीक जानता है कि वह तांबेका वर्तन है और दूसरा फरीक समझता है कि वह झूठे मुलम्मेकी कलई है। सिंपेथीसे मेरी मुराद बिराद-राना या दोस्ताना सिंपेथी है।" सर सैयद अहमदका उद्देश्य यह था कि मुस-लमान अगर अंग्रेजी सल्तनतके वफादार बने रहेंगे तो आगे चलकर मुसल-मानोंको काफी फायदा होगा और सरकारी महकमोंमें उन्हें काफी जगहें मिलेंगी। लेकिन मुसलमानोंमें शिक्षाकी कमी थी। इस बातको सर सैयद अहमद तथा अन्य मुस्लिम नेताओंने महसूस किया और मुसलमानोंमें शिक्षा-का प्रचार आरम्भ किया गया। १८८६ ई० में 'मुस्लिम शिक्षा सम्मेलन' का जन्म हुआ, जिसका अधिवेशन वर्षमें एक बार हुआ करता था। उनकी कोई राजनीतिक संस्था न थी। लार्ड मिण्टो मुसलमानोंको विशेष प्रतिनिधित्व देना चाहते थे। उन्होंने मुसलमानोंको आश्वासन दिलाया था कि नये शासन विधानमें मुसलमानोंके स्वत्वोंकी रक्षाका पूरा-पूरा ध्यान रखा जायगा और पृथक्-निर्वाचन द्वारा अपनी संख्याके अनुपातसे अधिक प्रतिनिधि चुननेका अधिकार दिया जायगा। १९०६ में ही लार्ड मिण्टोके प्रोत्साहनसे मुस्लिम-लीगकी स्थापना हुई। इसका उद्देश्य भारतमें बसनेवाली अन्य जातियोंके साथ स्नेहभाव रखते हुए अपनी जातिके स्वत्वोंकी रक्षा करना था। लीगके उद्देश्यमें मुसलमानोंकी राजभक्तिका ऐलान किया गया था। इस प्रकार पृथक्-निर्वाचनकी नींव डाली गयी और इस प्रथाका आरंभ हुआ। इससे साम्प्रदायिक भावोंको उत्तेजना मिली और मुसलमानोंकी देखादेखी १९०९ ई० में पंजाबमें प्रान्तीय हिन्दूसभाकी स्थापना की गई और वहीं यह निश्चय हुआ कि अगले वर्ष अ० भा० हिन्दूसभाकी स्थापनाका आयोजन किया जाय। मुस्लिम लीगके

अधिवेशनोंकी कार्रवाइयोंको देखनेसे यह स्पष्ट है कि मुसलमानोंमें साम्प्रदायिक भावकी वृद्धि होती चली गई और वे हिन्दुओंकी शक्ति एवं प्रभावको कम करनेके उपाय सोचने लगे। उदाहरणके लिये १९१० ई० में मुस्लिम-लीगके मंचसे यह सुझाव पेश किया गया कि अगली मर्दुमशुमारीमें अछूतोंको हिन्दू न लिखा जाय। उनका तर्क यह था कि अछूतोंको हिन्दुओंमें शुमार करनेसे अछूतोंका काफी नुकसान होता है। उनकी शिक्षा-दीक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं की जाती और हिन्दू निर्वाचन क्षेत्रोंसे उनके सच्चे प्रतिनिधि भी नहीं चुने जा सकते। इसके सिवा मुसलमानोंका भी काफी नुकसान होता है, क्योंकि अछूतोंको हिन्दुओंमें सम्मिलित करनेसे उन्हें अपनी संख्यासे अधिक प्रतिनिधित्व मिल जाता है। मुस्लिम लीगकी ओरसे इस आशयका एक प्रार्थना-पत्र भी सरकारके पास भेजा गया मगर हिन्दुओंके प्रचण्ड विरोधके कारण उनका उद्देश्य पूरा न हो सका। यह भी एक आश्चर्यकी बात है कि १९२३ ई में कोकोनाड़ कांग्रेसके अवसर पर अध्यक्षकी हैसियसे मौ० मुहम्मद अलीने जो भाषण दिया था उसमें भी उन्होंने यह सुझाव रखा था कि हिंदुओं और मुसलमानोंको चाहिये कि वे अछूतोंको एक लावारिसमाल (Unclaimed property) की तरह आपसमें आधेआध बांट लें। प्रायः सभी विचारके हिंदू नेताओंने उनके इस सुझावको नापसंद किया था। इससे यह संकेत मिलता है कि मौ० मुहम्मद अली जैसे एक प्रभावशाली राष्ट्रीय नेतामें भी जो राष्ट्र-पतिकी हैसियतसे बोल रहे थे, साम्प्रदायिक भावना कितनी अधिक थी। बादमें चलकर अलीबंधु कितने कट्टर साम्प्रदायिक व्यक्ति साबित हुए यह कौन नहीं जानता!

वङ्ग-भङ्गके समय मुसलमानोंसे कहा गया था कि तुम्हारे लाभके लिये ही बङ्गालके दो टुकड़े किये जाते हैं। पूरबी बङ्गाल और आसाममें मुसलमानोंकी

अपेक्षा हिन्दुओंकी आबादी अधिक थी। ढाका इसकी राजधानी थी। वङ्ग-भङ्गसे मुसलमानोंकी पुरानी स्मृतियां जागृत हो गई थीं और उनको यह आशा बन्ध गयी थी कि अपने जातीय विकासके लिये उनको उचित क्षेत्र मिल गया है। परन्तु बङ्गालके हिन्दुओंके असन्तोषको दूर करनेके लिये १९११ में जब बङ्ग-भङ्ग रद्दकर दिया गया तो मुसलमानोंकी आशापर पानी फिर गया। वे अब धीरे धीरे समझने लगे कि केवल हिन्दुओंको दुर्बल करने की मंशासे ही सरकारने मुसलमानोंसे दोस्ती बढ़ाई थी। मुसलमान सरकारसे असन्तुष्ट हो गये। लेकिन बादमें चलकर पृथक् निर्वाचन, साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व एवं संरक्षणसे मुसलमानोंके नेता सरकारके समर्थक बन गये। १९१२-१३ में यूरोपके राष्ट्रोंके आक्रमणसे इस्लामकी रक्षा करनेके लिये 'पान-इस्लामिज्म' आन्दोलनका जन्म हुआ। इस आन्दोलनके जन्मदाता सैयद जमालुद्दीन अफगानी समझे जाते हैं। भारतके मुसलमानोंपर भी इस 'पान इस्लामिज्म' ने अपना असर डाला और सर मुम्मद इकबाल जैसे राष्ट्रीय कवि और फिलासफर भी इस आन्दोलनके शिकार बन गये। इस आन्दोलनका उद्देश्य जिब्राल्टरसे लेकर सहारनपुरतक एक विशाल मुस्लिम राज्यकी स्थापना करना था। लेकिन मुस्लिम नेताओंकी यह योजना अमली जामा न पहन सकी।

१९१६ ई० में कांग्रेस और मुस्लिम लीगकी ओरसे शासन सुधारोंके सम्बन्धमें एक संयुक्त मांग पेश की गई। इसी अवसरपर हिन्दुओं और मुसलमानोंने प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें एक समझौता कर लिया जिसके अनुसार हिन्दुओंने कई प्रान्तोंमें मुसलमानोंको उनकी संख्यासे कहीं अधिक प्रतिनिधित्व देना स्वीकार किया था। यह समझौता 'लखनऊ पैक्ट' के नामसे मशहूर हुआ। किन्तु 'लखनऊ पैक्ट' का कोई अच्छा नतीजा नहीं निकला। ऊपरसे देखनेके लिये तो साम्प्रदायिक समस्या एक तरह हल हो गई-सी

जान पड़ती थी मगर भीतर-ही-भीतर ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ हिन्दुओं और मुसलमानोंको भड़कानेमें व्यस्त थे। गोरे अखबारोंने हिन्दू-मुस्लिम एकताके खिलाफ प्रचार करना आरम्भ किया और एकता करानेकी चेष्टा करनेवालोंके बारेमें यह लिखा जाने लगा कि—'ये लोग इन दोनों जातियोंको क्यों मिलाना चाहते हैं सिवा इसके कि दोनों जातियोंको मिलाकर सरकारी मुखालिफतकी जाय। ऊंचे दर्जेके सरकारी ओहदेदार एक ओर तो दिखानेके लिये यह कहा करते थे कि—'भारतकी साम्प्रदायिक समस्याका हल शिक्षितवर्गके हाथोंमें है और दूसरी ओर शिक्षितवर्गके लोगोंको ही, सरकार नौकरियों एवं प्रतिनिधिमूलक संस्थाओंमें सीटोंकी लालच दिखाकर साम्प्रदायिक झगड़ोंके लिये उभाड़ा जाता था। इस द्वैध नीति (Dual Policy) से देशका बहुत बड़ा अपकार किया गया। १९२० के बाद देशमें जगह-जगह हिन्दू-मुस्लिम दंगे शुरू हो गये। १९२१ के असहयोग-आन्दोलनके समय मालाबारमें जो मोपला-विद्रोह हुआ और कुछ हिन्दुओंको जबरन् मुसलमान बनाया गया उससे हिन्दू बहुत क्षुब्ध हो गये। हिन्दुओंने आत्म रक्षाके लिये शुद्धि सङ्गठन-का आंदोलन आरम्भ किया और स्वामी श्रद्धानन्दने बड़ी धूमधामसे हजारों मलकानोंकी शुद्धि की। हिन्दू महासभाके नेताओंने एक नारा बुलन्द किया कि—"The claim of the race is the claim of religion' यानी—नस्लकी रक्षाका हक धर्मकी सबसे बड़ी आज्ञा है। इस आन्दोलनके कारण हिन्दू-मुसलमानका झगड़ा और भी बढ़ गया। एक बहुत बड़ी संख्यामें मल-कानोंको हिन्दू बनते देखकर मुसलमानोंका उत्तेजित हो जाना स्वाभाविक था। लेकिन मुसलमान सिद्धान्त रूपसे शुद्धिका विरोध नहीं कर सकते थे क्योंकि वे खुद तञ्जीम व तबलीगका काम पहलेसे ही करते थे। सारांश यह कि इन्हीं विविध कारणोंसे हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य बढ़ता ही गया। १९२४ में कोहाट

गुलबर्गामें भीषण दंगे हुए। १९२६ में कलकत्ता भी भीषण दंगेका अखाड़ा हो गया। २९ अगस्त १९२७ को केन्द्रीय असेम्बलीमें भाषण देते हुए तत्कालीन वायसराय लार्ड इर्विनने देशके साम्प्रदायिक झगड़ोंका जिक्र करते हुए कहा था कि—"भारतमें मुझे १७ महीने आये हो गये और इस अवधिके भीतर मैं समूचे देशमें साम्प्रदायिक दंगोंके कारण होनेवाले भयङ्कर रक्तपातको देखकर परेशान हो गया हूं। सारे देशमें साम्प्रदायिकताकी आग लगी हुई है और उसकी प्रचण्ड लपटोंसे भारतवर्ष जल रहा है। गत १८ महीनोंके भीतर, उपलब्ध संख्याके अनुसार इस मारकाटके कारण ३०० आदमी मारे गये और २५०० के लगभग जख्मी हुए हैं।" उन्होंने देशकी अवस्थापर दुःख प्रकट किया और दोनों जातियोंके जिम्मेदार साम्प्रदायिक नेताओंसे एकता एवं शान्ति स्थापित करनेकी अपीलकी और इस दिशामें स्वयं भी कोशिश करनेका आश्वासन दिया।

देशमें मजहबी झगड़ोंको बढ़ते देखकर महात्मा गान्धीने बेहद वेदना महसूस की। इन दङ्गोंके कारण स्वाधीनताकी लड़ाईके मार्गमें बड़ी जबर्दस्त बाधाएं आ खड़ी हुईं। राष्ट्रीय एकताके बिना स्वाधीनता प्राप्त करना असम्भव है। भारतकी इस भयङ्कर मजहबी फूट और धार्मिक उन्मादसे विदेशी सरकारने काफी फायदा उठाया। भारतीय मांगके जवाबमें यह कहा जाने लगा कि चूंकि हिन्दुस्तानमें मजहबी झगड़ोंके बवण्डर उठा करते हैं और मजहबके नामपर अराजकता पैदा करनेकी चेष्टा होती रहती है इसलिये वह आजादीका मुस्तहक नहीं है। सरकारको यह एक अच्छा बहाना मिल गया। मजहबी जोशके उबालमें आजादीका जोश ठण्डा पड़ने लगा। राष्ट्रीय नेताओंकी चिन्ता बढ़ी। इस समस्याको हल करनेके लिये महात्मा गान्धीने चेष्टा आरम्भ की। दोनों जातियोंके पापका प्रायश्चित करनेके लिये उन्होंने २१ दिनका उपवास किया।

साम्प्रदायिक समझौता करानेके लिये दिल्लीमें एकता-सम्मेलन बुलाया गया। मगर इसका कोई अच्छा नतीजा नहीं निकला। अपना उल्लू सीधा करनेकी गरजसे दोनों कौमोंमें मारकाट कराते रहनेके लिये तुले हुए लोग भला इन समझौतों और शर्तोंके कायल कब हो सकते थे। मजहबी जोशको मिटानेके लिये कांग्रेसने दोनों जातियोंके जन-समूहमें प्रवेश करनेकी चेष्टा पहले पहल नहीं की। कांग्रेसकी यह एक भयंकर भूल थी। साधारण जनतामें साम्प्रदायिक जोश नहीं है। वह तो कुछ स्वार्थी नेताओंके भड़कानेसे सिर फुड़ौल करनेको आमादा हो जाती है। हिन्दू मुस्लिम नेताओंसे परामर्श करके कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीने एक रिपोर्ट तैयार की और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने १९२७के मई महीनेमें इस रिपोर्टको स्वीकार किया। इस रिपोर्टमें नवीन शासन विधानके अन्तर्गत मुसलमानोंका क्या स्थान होगा उसका निश्चय किया गया था। गोवध और मस्जिदके सामने बाजेके प्रश्नपर विचार करनेके लिये १९२७ के अक्तूबर महीनेमें कलकत्तेमें फिर एकता सम्मेलन हुआ। गरज यह कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेकी जटिल समस्याको मिटानेकी बड़ी कोशिशें हुईं लेकिन "मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।"

कांग्रेस, लिबरल फेडरेशन, मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभाके वार्षिक अधिवेशनोंमें साम्प्रदायिक मसलेपर काफी वाद-विवाद होते रहे। भारतकी साम्प्रदायिक समस्याको सुलझानेके लिये प्रायः सभी तबकोंके नेता चिन्तित थे। देशमें चारों ओर साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे और सभी जातियोंके लोगोंका जानमाल खतरेमें था। अतएव, फरवरी सन् १९२८ ई०में दिल्लीमें एक सर्वदल सम्मेलन हुआ। सभी विचारोंके भारतीय राजनीतिज्ञ इसमें शामिल थे। हिन्दुओं और मुसलमानोंको दो लड़ाकू शिविरोंमें रखनेवाले राजनीतिक मतभेदोंपर इस सम्मेलनमें काफी विचार-विनिमय हुआ और झगड़े-

को सदाके लिये मिटा देनेकी चेष्टा की गई। लेकिन भारतीय प्रतिनिधि किसी खास फैसलेपर नहीं पहुंच पाये और यह निश्चय किया गया कि सम्मेलनका दूसरा अधिवेशन मई महीनेमें बम्बईमें हो। मई महीनेकी कानफ्रेंसने भारतके शासन विधानका एक मसविदा तैयार करनेके लिये एक कमेटी नियुक्त कर दी। कमेटीको यह अधिकार दिया गया कि वह 'उन समस्त प्रस्तावोंपर पूरे तौरसे विचार करे जो समय-समयपर भारतके अनेक महत्त्वपूर्ण साम्प्रदायिक, राजनीतिक तथा इसी तरहके अन्य संगठनोंमें पास होते रहे हैं।' इस कमेटीने भारतकी प्रायः सभी समस्याओंकी छानबीन करके बड़े परिश्रमके बाद एक रिपोर्ट तैयार की जो 'नेहरू रिपोर्ट' के नामसे मशहूर हुई। अगस्त १९२८ में सर्वदल सम्मेलनकी एक विशेष बैठक लखनऊमें बुलाई गयी और उसीके सामने नेहरू रिपोर्ट उपस्थित की गयी। रिपोर्टमें यह सिफारिश की गयी थी कि सिन्धको एक अलग प्रान्त बना दिया जाय और शासन-सुधारोंका विस्तार पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तथा बलूचिस्तान तक किया जाय। साथ ही बालिग मताधिकारकी बुनियादपर निर्वाचन-प्रणाली जारी की जाय और दस वर्ष पश्चात् साम्प्रदायिक निर्वाचनके प्रश्नपर फिरसे विचार किया जाय। सर्वदल सम्मेलनने इन सुझावोंको प्रस्तावके रूपमें स्वीकार कर लिया। लेकिन हिन्दू-महासभाने सिन्धके अलग किये जाने तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त और बलूचिस्तान तक शासन-सुधारके विस्तार करनेका जोरदार विरोध किया। हिन्दू-महासभाकी ओरसे यह दलील दी गयी कि यदि सिन्ध और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तको अलग प्रान्त बनाकर वहां शासन-सुधार लागू किया जायगा तो पंजाब और बगालको लेकर, जहां पहलेसे ही मुसलमान बहुसंख्या (Majority) में हैं, बहुसंख्यक मुस्लिम प्रान्तोंकी तादाद इसमें चार हो जायगी और इससे भारतकी भावी राजनितिक स्थितिमें मुसलमानोंकी प्रभुता बहुत ज्यादा बढ़

जायगी। नेहरू रिपोर्टकी सिफारिशोंसे मुसलमान भी राजी नहीं हुए और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके बीचकी खाई पटनेके बजाय चौड़ी होती गई।

इसी बीच एक संयुक्त मुस्लिम नीति स्थिर करनेके उद्देश्यसे सर्वदल मुस्लिम सम्मेलन करनेकी तैयारियां की जाने लगीं। इस मुस्लिम सम्मेलनका अधिवेशन ३१ दिसम्बर १९२८ ई०को दिल्लीमें हुआ जिसमें एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया गया। मुसलमानोंकी शिकायतों और मांगोंसे सम्बन्ध रखनेवाला यह एक अधिकृत प्रस्ताव समझा जाता है।

हिन्दुस्तानके विशाल आकार और इसके मानव जातितत्व, भाषातत्व, शासन परिचालन तथा भौगोलिक एवं प्रादेशिक पार्थक्यको मद्देनजर रखते हुए भारतीय अवस्थाओंमें जो सरकार उपयुक्त हो सकती है वह उपादानभूत राज्योंको पूर्ण स्वाधीनता एवं अवशेषात्मक अधिकार प्राप्त एक संघ-शासन प्रणाली है। केन्द्रीय सरकारका नियंत्रण शामिल स्वार्थोंके सिर्फ ऐसे ही विषयों पर होना चाहिये जो विधान द्वारा निश्चित रूपसे विश्वासपूर्वक उसे अर्पित किये जायं।

"यह अपरिहार्य है कि अन्तःसंम्प्रदायिक विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई मसविदा, प्रस्ताव अथवा संशोधन केन्द्रीय एवं प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओंमें पेश न किया जाय, उसपर वादविवाद न हो और वह पास न किया जाय यदि उस व्यवस्थापिका सभाके बहुसंख्यक तीन-चौथाई सदस्य, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, उक्त मसविदा, प्रस्ताव या संशोधनके विरोधी हों।

"विभिन्न भारतीय व्यवस्थापिका सभाओंके लिये पृथक् निर्वाचन द्वारा मुसलमानोंको अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करनेका अधिकार माना जा चुका है। अतएव, मुसलमानोंको उनके इस अधिकारसे, उनकी राय लिये बिना, महरूम नहीं किया जा सकता।

"भारतकी मौजूदा परिस्थिति जबतक कायम रहेगी तब तक विभिन्न व्यवस्थापिका सभाओं एवं अन्य वैध स्वायत्त-शासनाधिकार प्राप्त संस्थाओंमें वास्तविक गणतन्त्रमूलक सरकारकी सत्ता कायम करनेके लिये मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व पृथक् निर्वाचन पद्धतिके द्वारा होना अपरिहार्य है।"

"जब तक मुसलमानोंको यह सन्तोष न हो जायगा कि विधानमें उनके अधिकार एवं स्वार्थ भलीभांति सुरक्षित हैं तब तक किसी भी तरह वे संयुक्त निर्वाचन प्रणाली स्वीकार नहीं करेंगे। उपर्युक्त उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये यह परमावश्यक है कि केन्द्रीय एवं प्रान्तीय मंत्रिमण्डलोंमें मुसलमानोंको उनका वाजिब हिस्सा दिया जाय।

"यह अति आवश्यक है कि विभिन्न व्यवस्थापिका सभाओं एवं स्वायत्त शासनाधिकार प्राप्त संस्थाओंमें मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व ऐसी बुनियाद पर संयोजित किया जाय जिससे उन प्रान्तोंमें जहां मुसलमान बहुमतमें हैं, उनका हक न मारा जाय जिन सूबोंमें मुसलमान अल्पमतमें हैं वहां उनका प्रतिनिधित्व प्रचलित विधानसे किसी भी कदर कम न हो। चूंकि हिन्दुस्तानके समस्त प्रान्तोंमें प्रतिनिधि मुस्लिम सभाओं द्वारा सर्वसम्मतिसे यह निश्चय किया गया है कि समूचे हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंके हितोंकी रक्षाके लिये उन्हें पर्याप्त संरक्षण दिये जायं, इस लिये यह सम्मेलन मुसलमानोंकी इन सारी मांगोंको तसदीक करते हुए उसे मंजूर करता है।

"चूंकि मानव जातितत्व, भाषातत्व, भौगोलिक एवं शासन परिचालनके आधारोंपर सिन्धका शेष बम्बई प्रेसीडेंसीसे कोई मेल नहीं खाता है इसलिये उसे एक अलग प्रान्त बना दिया जाय और उसकी आबादीके हितमें उन्हीं आधारों पर वहां पर भी व्यवस्थापिका सभा तथा शासन सभाकी स्थापना की जाय जिन आधारों पर भारतके अन्य प्रान्तोंमें यह अपरिहार्य है। सिंधके

अल्पसंख्यक हिन्दुओंको उनकी जनसंख्याके अनुपातसे उसी ढंगका पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाय जिस तरह उन प्रान्तोंमें मुसलमानोंको प्राप्त है जहां वे अल्पमतमें हैं। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त व बलूचिस्तानमें भी भारतके अन्य सूबोंकी ही तरह—न सिर्फ वहांके लोगोंके ही हितमें बल्कि भारतकी वैधानिक उन्नतिके हितमें भी, शासन सुधारोंका विस्तार किया जाय और अल्पमत प्राप्त हिन्दुओंको उनकी संख्याके अनुपातसे वैसा ही पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाय जैसा इन प्रान्तोंमें मुसलमानोंको प्राप्त है, जहां वे अल्पमत—माइनारिटीमें हैं।

"भारतीय शासन परिचालनके हितमें यह अपरिहार्य है कि विधानमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये ताकि समस्त सरकारी नौकरियोंमें, आवश्यक योग्यताका विचार रख कर, मुसलमानोंको भी अन्य भारतीयोंकी ही तरह पर्याप्त हिस्सा मिले। भारतकी राजनीतिक परिस्थितिको देखते हुए यह आवश्यक है कि मुसलमानोंमें शिक्षा प्रचार, उनकी भाषा, धर्म, जातीय कानून एवं दातव्य संस्थाओंको विधानानुसार सरकारकी ओरसे वाजिब आर्थिक मदद मिलनेकी व्यवस्था होनी चाहिये। विधानमें यह निश्चित शर्त होनी चाहिये। हिन्दुस्तानमें शासन विधानके लागू हो जानेके बाद केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा द्वारा उसमें भारतीय संघके उपादान भूत अंशोंके संयोग एवं मेलके बिना कोई रद्दोबदल नहीं होगा।

"अतएव, यह सम्मेलन बड़े जोरदार शब्दोंमें ऐलान करता है कि कोई भी विधान, चाहे जो भी उसे बनाये या पेश करे, भारतीय मुसलमानोंको तबतक मंजूर न होगा जबतक वह इस प्रस्तावमें सन्निहित सिद्धान्तोंके अनुरूप न हो।"

नेहरू रिपोर्टकी सिफारिशोंका विरोध करनेके बावजूद भी हिन्दू-महासभा कतिपय मामूली संशोधनोंके साथ रिपोर्टसे सहमत हो जानेको तैयार

थी। मगर मुसलमानोंकी ओरसे नेहरू रिपोर्टके मुकाबले जब दूसरा प्रस्ताव रखा गया तो हिन्दुओंपर इसकी प्रचण्ड प्रतिक्रियाका होना बिलकुल स्वाभाविक था। लिहाजा मार्च १९२९ ई०में हिन्दू महासभाका जो अधिवेशन सूरतमें हुआ। उसमें यह ऐलान किया गया कि चूंकि मुस्लिम नेताओंने नेहरू रिपोर्ट-की सिफारिशोंको मंजूर करनेसे इनकार कर दिया है इसलिये महासभा भी किसी सम्प्रदायको विशेष सुविधा देनेके सिद्धान्तका विरोध करती है। इस तरह ओछे शासन-सुधारोंके नामपर जातिगत सुविधायें पानेकी घातक मनोवृत्ति ने जोर मारा और समूचे भारतको राष्ट्रीयताके मजबूत बंधनमें आबद्ध करनेकी स्तुत्य चेष्टायें विफल हो गईं। साइमन कमीशनने मजहबी झगड़ेका विश्लेषण करते हुए अपनी रिपोर्टमें लिखा है कि:—"× × × दोनों जातियोंके बीच पारस्परिक व्यग्रता एवं लिप्साकी जो भावना आज देखी जा रही है यह भारतके उज्वल राजनीतिक भविष्यका परिणाम है। जबतक शासनसत्ता ब्रिटिश सरकारके हाथमें रही है और स्वायत्त-शासनकी कल्पना नहीं की गई थी तबतक तो हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यका दायरा संकीर्ण रहा है और दोनों कौमोंमें कोई खास दुश्मनी नहीं रही है। इसका मतलब केवल यह नहीं है कि वर्तमान तटस्थ नौकरशाहीने साम्प्रदायिक झगड़ेको अवसन्न किया है। इसका एक कारण यह भी रहा है अभीतक एक सम्प्रदायके लोगोंको दूसरे सम्प्रदायके लोगोंकी प्रधानतासे भय खानेकी वजह महज मामूली रही है। आज भारतीय रियासतोंमें ब्रिटिश भारतकी अपेक्षा साम्प्रदायिक लोकतन्त्रका जो तुलनात्मक अभाव देखा जा रहा है उसकी भी यही वजह है। ब्रिटिश भारतकी एक पीढ़ी आगेकी अवस्थाओंसे जो लोग परिचित हैं वे यह सबूत दे सकते हैं कि उस समय दोनों कौमोंके दर्मियान मेल-जोलकी भावना ज्यादा थी और दोनों पक्षसे साम्प्रदायिक झगड़ोंके कारण नागरिक शांतिका बहुत

कम खतरा था। लेकिन शासन-सुधारोंके प्रतिष्ठापन और उसके कारण भविष्यमें मिलनेवाली शासन मूलक सुविधाओंके लालचने हिन्दुओं एवं मुसलमानोंकी प्रतिद्वन्दिताको एक नया रूप दे दिया है।" इसी साइमन कमीशनने अपनी रिपोर्टमें यह सिफारिश की थी कि नये शासन-सुधारके अनुसार बननेवाली प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओंमें मुसलमानों, यूरोपियनों तथा एंग्लो-इण्डियनोंको साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया जाय।

गोलमेज कानफ्रेंसके अधिवेशनोंमें साम्प्रदायिक समस्याने बड़ा जोर पकड़ा एक ओर मुसलमान थे जो अपने दिल्ली वाले प्रस्ताव पर अड़कर अल्पसंख्यकके अधिकारोंकी रक्षाके लिये संरक्षणकी मांग कर रहे थे। मुस्लिम प्रतिनिधियोंकी जबानसे, जिनमें मि० जिन्ना और सर आगाखांके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, सिर्फ सेफगार्ड, रिजरवेशन,(संरक्षण)और माइनारिटीराइटके (अल्पमतके अधिकार) शब्द सुने जाते थे। इस अल्पमतके अधिकारकी आवाजसे सेंट जेम्स पैलेस, जहां गोलमेज बैठी थी, गूंज रहा था। मुसलमान प्रतिनिधि इस बातके लिये लड़ रहे थे कि बंगाल और पंजाबमें मुसलमानोंको बहुसंख्यक जाति घोषित किया जाय और तदनुसार उन्हें शासनमूलक अधिकार दिये जायँ, प्रान्तीय और केन्द्रीयमन्त्रिमण्डलोंका निर्माण साम्प्रदायिकताके आधार पर किया जाय, मुसलमानोंके धार्मिक एवं सामाजिक हितोंके विरोधी कानूनोंको साम्प्रदायिक प्रत्यादेश (Communal veto) से रक्षा करनेकी व्यवस्था की जाय और केन्द्रमें मुसलमानोंका ३३ फीसदी प्रतिनिधित्व स्वीकार किया जाय। दूसरी ओर हिन्दू-महासभावादी प्रतिनिधियोंका दल था। यह दल मुसलमानोंकी साम्प्रदायिक मांगोंका सख्त विरोधी था और समझौता करनेको तैयार नहीं होता था। सिखों और अछूतोंकी मांगोंका सवाल भी कम पेचीदा न था। फलतः पंजाबमें प्रतिनिधित्वके बंटवारेके प्रश्नको लेकर गोलमेजकी पहली बैठकमें फूट पड़

गई। ब्रिटिश सरकार और कुछ उदारवादी भारतीय डेलीगेटोंकी चेष्टाओंके बावजूद भी साम्प्रदायिक ज़िच (Communal deadlock) दूर न हुआ।

पृथक् प्रतिनिधित्वकी समस्याको हल करके एक निश्चित नतीजे पर पहुंचनेके लिये गोलमेज परिषद्की ओरसे सभी दलोंके प्रतिनिधियोंको लेकर एक अल्पसंख्यक उपसमिति (Minorities Sub-Committee) बनायी गयी। इस जटिल प्रश्न पर मैं एक अलग अध्यायमें किंचित् विस्तारके साथ प्रकाश डालनेकी चेष्टा करूंगा। यहां पर इतना ही कह देना उचित होगा कि अल्पसंख्यक उपसमिति भी इस प्रश्नको हल नहीं कर सकी और उसकी सारी चेष्टायें—सारे प्रयास विफल गये। प्रायः सभी जातियों एवं दलोंके डेलीगेटोंने शुरूसे ही इस सत्यको स्वीकार किया है कि भारतमें उत्तरदायी स्वायत्त शासनकी सफलता सभी दलों एवं जातियोंके पारास्परिक सहयोग पर निर्भर है। साथ ही इस तरहके सहयोग पर जो नया शासन-विधान तैयार किया जाय उसमें विभिन्न जातियोंके हितों एवं हकोंको सुरक्षित रखनेके लिये एक निश्चित व्यवस्था भी होनी चाहिये। इसलिये गोलमेज परिषद्में यह निश्चय किया गया था—सभी फिरकों एवं दलोंके प्रतिनिधि अपने-अपने दावों तथा अधिकारोंके सम्बन्धमें एक अधिकृत वक्तव्य तैयार करें और उसे परिषद्के सामने पेश करें ताकि उन दावों एवं अधिकारोंको ध्यानमें रखकर भावी विधानका मसविदा बनाया जाय। किन्तु दुर्भाग्यवश सभी जातियों एवं दलोंके प्रतिनिधियोंने इस मसले पर संकीर्ण दृष्टिकोणसे विचार किया। यह एक बड़े खेदका विषय है कि बहुसंख्यक दल अथवा हिन्दू जातिके डेलीगेटोंने भी इस दिशामें कम संकीर्णताका परिचय नहीं दिया। शक और खौफकी बिना पर कदम आगे बढ़ानेमें कामयाबी नहीं हासिल होती। सफलता प्राप्त करनेके लिये बड़े साहस और निर्भीकताकी आवश्यकता हुआ करती है। लिहाजा सीटोंके

संरक्षण, पृथक् निर्वाचन एवं प्रत्येक जातिके प्रतिनिधियोंकी संख्याको लेकर सभी दलोंके नुमाइंदे परस्पर सशंकित बने रहेंगे। संयुक्त निर्वाचनके प्रश्न पर महज मौखिक भक्ति प्रकट की गई। नतीजा यह हुआ कि सारी कोशिशें बेकार गईं। चूंकि डेलीगेटोंमें कोई समझौता नहीं हो सका और समझौता न होने देनेके लिये कुछ ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ, जिनमें तत्कालीन भारत सचिव सर सेमुयल होरने विशेष हिस्सा लिया, भीतर ही भीतर साजिशें करते रहे इसलिये अगस्त १९३२ ई० में सम्राट्की सरकारने साम्प्रदायिक निर्णयका निर्माण किया और उसके आधार पर विधान बनानेका काम जारी रखा गया। इस निर्णयने साम्प्रदायिकताकी जड़को और भी मजबूत करनेमें बहुत बड़ा काम किया। सर होर एण्ड कम्पनीको साजिश करनेमें सफलता मिली और भारतीय प्रतिनिधि एक भयंकर मायाजालमें पड़कर देशके भविष्यपर कुठाराघात करनेके कारण बने।

गोलमेज परिषद्को देशके सच्चे शुभचिन्तकोंने बच्चोंके खेलसे अधिक कभी महत्व नहीं दिया। इस परिषद्से असफलताके अतिरिक्त किसी बातकी आशा नहीं की जा सकती थी। दूसरी गोलमेज परिषद्में कांग्रेसके एकमात्र प्रतिनिधि होकर यद्यपि महात्मा गांधीने भी भाग लिया था मगर उन्हें भी असफल होकर ही वापस लौटना पड़ा था और भारतके तटपर कदम रखते ही इस महापुरुषको, जो पैंतीस करोड़ भारतीयोंका प्रतिनिधि बनकर स्वाधीनताका सार लाने लन्दन गया था, लार्ड वेलिङ्गडनकी सरकारने यरवदा जेलकी भीमकाय काली दीवारोंके भीतर कैद कर दिया था। गोलमेज कानफ्रेंसके आरम्भिक दिनोंमें कतिपय तथाकथित भारतीय प्रतिनिधियोंकी मोहनिद्राको भंग करनेके अभिप्रायसे लन्दनके सुप्रसिद्ध पत्र 'डेली टेलीग्राफ' में मि० ऐशमीड बार्टलर नामक एक अंग्रेज लेखकने बड़े पतेकी

बात लिखी थी और उक्त लेखककी वह भविष्यवाणी आगे चलकर अक्षरशः सिद्ध हुई। उन्होंने लिखा था कि,—"देशी राज्योंके प्रतिनिधि वास्तविकतासे बहुत परे हैं—वे परवाह हैं। मुसलमानों और अन्य फ़िरकेवन्द प्रतिनिधियों-का भी अजीब रुख है। दुनिया बड़ी दिलचस्पीके साथ इन 'भारतीय प्रति-निधियों' के आपसके सिरफुड़ौलका तमाशा देखेगी कि किस तरह वे आपसकी 'तू-तू, मैं-मैं' में अपना मज़ाक उड़वाते हैं। इस बीचमें भारत सरकारको देशके राजनीतिक आन्दोलनको कुचलनेके लिये काफी मौका मिल जायगा। और नरम दलके लीडरोंको, जो इस कान्फ्रेंसरूपी जेलमें बन्द होंगे, भारत सरकार-पर अपना नैतिक प्रभाव डालनेका मौका ही न मिलेगा।' हुआ भी दरअसल यही। भारतीय प्रतिनिधियोंने अपनी हँसी कराई और नौकरशाहीके हाथों कठपुतलीकी तरह नाचनेके बाद असफलताका भार लेकर वापस चले आये।

८

पाकिस्तानका मसला

मुस्लिम-लीगके जीवनकालमें उसके लाहोरके उस अधिवेशनको सबसे महत्वपूर्ण समझना चाहिये, जिसमें भारतको मुस्लिम-भारत एवं हिन्दू-भारतमें विभक्त करनेके लिये पाकिस्तानकी खतरनाक योजना स्वीकार की गई। भारतके अङ्गच्छेदका ख्याल नया नहीं है। यह प्रचार काफी समयसे होता रहा है। लेकिन राजनीतिक भारतने आमतौरपर इस विचारको कभी मंजूर नहीं किया; इसे असम्भव-सा समझा जाता रहा है। किन्तु मि० जिन्नाकी रहनुमाईमें मुस्लिम लीगने पाकिस्तानको अपना उद्देश्य बना ही लिया। लाहौरकी बैठकमें लीगी मुसलमानोंने इस तजवीजको मंजूर कर लिया और आज इसे अमली जामा पहनानेके लिये मुस्लिम-लीगके नेता जमीन आसमानके कुलाबे एक कर रहे हैं। मि० जिन्ना और उनकी जमातके चन्द फिरकापरस्त नेता सोते-जागते, उठते-बैठते जिब्राल्टरसे लेकर आसामतक इस्लामी राज्यकी सब्ज-रेखा खींचनेका ख्वाब देखा करते हैं। आप इसे पागलपन कहें या राजनीतिक चालबाजी कहें; आप इसे आठ करोड़ मुसलमानोंका रहनुमा बने रहनेका ढकोसला कहें या आसमानमें

हीरोंके टुकड़ोंकी तरह चमकनेवाले सितारोंको पकड़ लेनेकी हसरत कहें; आप इसपर हँसे या इसका मजाक उड़ायें; आप इसे अंग्रेज शासकोंकी कूटनीति कहें, या इसे मि० जिन्नाका कटमुल्लापन कहें, लेकिन आप इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते— हँसकर टाल नहीं सकते। बुरा हो या भला, पाकिस्तानकी योजना आज हमारे सामने है। हिन्दुस्तानमें इस्लामकी एक रूहानी-इमारत तैयार करनेके लिये पाकिस्तानके समर्थक आवाज उठा रहे हैं। यह सच है कि हिन्दुस्तानके सारे मुसलमान पाकिस्तानके समर्थक नहीं हैं। लेकिन इसके समर्थकोंकी संख्या भी कम नहीं है; इस सच्चाईसे हम इन्कार नहीं कर सकते। मि० जिन्नाके १४ मन्त्रोंका उदय एक साथ हुआ था, पर तबसे न जाने कितने १४ उसमें जुड़ते गये और अन्तमें 'पाकिस्तान' की विभीषिका सामने आई। इसके शोलोंसे, इसकी लपटोंसे निकलनेवाली चिनगारियोंसे भारतीय राष्ट्रीयताका भव्य-भवन जलकर राख हो जायगा। यह एक ऐसा खञ्जर है, जो हमारे राष्ट्रीय जिगरको चाक कर देगा और आजादी हासिल करनेकी हमारी तमन्ना मासूमीकी हालतमें ही मर जायगी।

अब हमें इस मसलेपर बिचार करना होगा कि आखिर यह पाकिस्तान है क्या बला? पाकिस्तानका शाब्दिक अर्थ है पाकोंका—साफ-सुथरोंका देश! पान-इस्लाम या दुनियाके इस्लामी देशोंको संगठित करनेका आन्दोलन बहुत पहलेसे उठ चुका था, और 'चीनो अरब हमारा, सारा जहां हमारा' के नारे लगाये जा रहे थे। मगर पाकिस्तानकी पहली योजना मि० रहमत अलीने १९३३ ई० में देशके सामने पेश की थी। मौजूदा पाकिस्तान-योजना भारतकी प्रस्तावित संघ-योजना (Federal Scheme) के खिलाफ तैयार की गई है। मुसलमानोंके साम्प्रदायिक नेता हिन्दुस्तानको सङ्घबद्ध राष्ट्र नहीं देखना चाहते। हिन्दू बहुमतके साथ मिलनेमें उन्हें खतरा नजर आता है। पाकिस्तानके समर्थकोंका दावा है कि भारत-

की हिन्दू-मुस्लिम समस्या अन्तर्जातीय (Inter-communal) नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय है। मि० जौन कोटमैनने अपनी 'मेगना कोटेनिया' नामक पुस्तकमें पाकिस्तानसे मिलती-जुलती एक स्कीमका खाका खींचा है। उन्होंने यह आशङ्का प्रकट की है कि फारससे लेकर कलकत्ता तक एक इस्लामी राज्यकी स्थापना करने-की कल्पना मुसलमानोंके मजहबी जोशको उभाड़नेवाली सिद्ध हो सकती है। समूचे एशियाके मुसलमानोंपर इस योजनाका गहरा असर डाला जा सकता है। भारतके विभाजनका लक्ष्य बताते हुए एक पंजाबी लेखकने "The Confed-eracy of India" नामक किताबमें लिखा है कि—"भारतकी स्वाधीनताका जो अर्थ मुसलमानोंके लिये है, ठीक वही अर्थ कांग्रेसके लिये देशकी स्वाधीनताका नहीं है। कांग्रेसके लिये भारतकी स्वाधीनता एक राष्ट्रीय, आवश्यकताके रूपमें है; यह उसे राष्ट्रीय आत्मसम्मानके पुनरुत्थान तथा *अन्य राष्ट्रीय सामाजिक और आर्थिक लाभोंके लिये* चाहती है। मुसलमानोंके लिये आजादी एक मजहबी जरूरत है, उसके जरिये रूहानी और दुनियाके फायदे हासिल करनेमें आसानी हो सकती है। मुसलमान अपने धार्मिक और सांस्कृतिक आदर्शोंके निमित्त स्वाधीनता चाहते हैं; क्योंकि विदेशी हुकूमतमें उनका पोषण नहीं हो सकता। विदेशी राज्य या ऐसे राज्यमें, जिनमें गैर मुसलमानोंके साथ संयुक्त शासन हो, इन्सानका इस्लामी व्यक्तित्व जिसपर स्वर्गकी प्राप्ति निर्भर है, विकसित नहीं हो सकता; क्योंकि उसमें आत्मअभिव्यक्तिके लिये सुयोगका अभाव होता है। सिर्फ इस्लामी राज्य ही ऐसा राज्य हो सकता है, जिसमें मुसलमानोंकी आत्म-अभिव्यक्तिके सुअवसरों-का अभाव न होगा।"

मुसलमानोंको आम तौरपर यह समझानेकी कोशिश की गई है कि हिन्दुस्तानकी राजनीतिक स्वाधीनतासे मुसलमानोंको कुछ भी फायदा नहीं

पहुंच सकता । आत्म-विकासका अवसर तो उन्हें तभी मिलेगा,, जब हिन्दुस्तानमें उनका अपना राज्य हो, जो हिन्दू-बहुमतके प्रभुत्वसे सर्वथा मुक्त रहे । एक तरहसे पाकिस्तानकी कल्पना करके मुसलमानोंके मजहबी जोशको उभाड़ा गया है । हिन्दू-भारतसे मुस्लिम भारतको पृथक् करके आदर्श इस्लामी राज्य की प्राप्तिके लिये उसे साधन बताया गया है । साथ ही, यह समझानेकी भी चेष्टा की गई है कि पृथक् मुस्लिम राष्ट्रकी स्थापनामें पूर्ण स्वाधीनताके सिद्धान्त भी सन्निहित हैं । मि० मोहम्मदअली जिन्नाने गत २३ मार्च १९४० को लाहोरके मुस्लिम लीगके अधिवेशनमें अध्यक्षकी हैसियतसे बोलते हुए कहा था कि—"राष्ट्रकी किसी भी परिभाषाके अनुसार मुसलमान पृथक् राष्ट्र हैं । अतएव उनका अपना देश, अपना प्रदेश और अपना राज्य होना ही चाहिये × × × ।" मि० जिन्नाका यह दावा बिलकुल गलत और प्रमाद पूर्ण है । इस सम्बन्धमें सर सैयद अहमद खां के विचार उल्लेखनीय है । ध्यान रहे, सर अहमद मि० जिन्नासे कहीं अधिक प्रभावशाली साम्प्रदायिक नेता थे, और मुसलमान जिस इज्जतके साथ उनका नाम लेते हैं वह इज्जत और सम्मान मि० जिन्नाको शायद अभी नहीं हासिल हो सका है । सर सैयद अहमद खां ने एक बार कहा था—" . . . Remember that Hindu or Muslim is a religious word. Otherwise the Hindus, Muslims and Christians who live in the country belong to one nation, and when we are of the same nation it is incombent on us to work together for the welfare of our common motherland. The time has passed when simply on account of different religions the two communities of the same country were regarded as two different nations." यानी—"याद रहे 'हिन्दू और 'मुसलमान' धार्मिक शब्द हैं, वरना हिन्दू, मुसलमान और ईसाई, जो इस देशमें रहते हैं, एक

राष्ट्र हैं और जब हम सब एक राष्ट्रके बाशिन्दे हैं तो यह हमारा फर्ज है कि हम अपने शामिल वतनकी भलाईके लिये मिल-जुलकर काम करें। वह वक्त गुजर गया जब सिर्फ इस बिनापर यह कहा जाता था कि एक ही देशकी दो जातियोंके मजहब चूंकि जुदा-जुदा हैं इस लिये वे दो पृथक् राष्ट्र समझे जायँ।"

हमारा दावा है कि सर सैयद अहमदके उपर्युक्त शब्दोंमें काफी वजन है और मि० जिन्नाकी गलत रहनुमाईमें हमारे जो मुसलमान भाई गुमराह हो गये हैं वे सर सैयदकी नसीहतों पर गौर फरमायेंगे। पाकिस्तानकी इस देश-घातक योजनाको आरम्भमें मुसलमानोंने 'पागलपन'का नाम दिया था। पहले तो मुस्लिम लीगने इस पर विचार तक करना उचित न समझा, लेकिन धीरे-धीरे इसके प्रचारने रंग दिखाया और इसका जहर अहिस्ता-अहिस्ता असर करने लगा। इस मुस्लिम-लीगी पाकिस्तानका रूप क्या होगा, इसकी झलक पंजाब मुस्लिम छात्र संघ द्वारा प्रकाशित 'खिलाफत-पाकिस्तान स्कीम' नामक पुस्तकसे मिलती है। इसमें जो विष-वमन किया गया है उसका एक नमूना इस प्रकार है:—"× × चूंकि सिर्फ मुसलमान ही मुकम्मल इन्सान (पूर्ण मनुष्य) हैं इस लिये दस्तूरे-हुकूमत (राज्य संचालन) में रायें (वोट) देनेका हक सिर्फ मुसलमानोंको ही हासिल होगा। हमारा दस्तूरे-हुकूमत इज्तमाहे-उम्मत (दलबन्दी) और अतायते-अमीर (तानाशाही) का इम्तजाज (मिश्रण) होगा, जिसका नाम खिलाफत है।" इन अवतरणोंसे साफ जाहिर है कि पाकिस्तानमें हिन्दुओं और सिखोंसे कैसा खौफनाक सलूक किया जायगा। मुसलमानोंके सिवा बाकी सभी मनुष्योंको पशु-सा समझा जायगा।

खाकसारोंके नेता अल्लामा इनायत उल्लाह मशरिकीने 'अक्सरीयत या खून' नामक एक ट्रैक्ट लिखा है। इस ट्रैक्टमें आप फरमाते हैं—"जिस तरह

अशरफ-उल-मखलूकात (परम जीव) की खिदमत और नशबोनुमा (पालन-पोषण) के लिये हैवानात (पशुओं) और नवजात (बनस्पति) को कुर्बान करना जायज है उसी तरह इस्लामी मफाद (लाभ) के लिये गैर मुसलमानों को हर तरह इस्तेमाल करना ऐन इन्साफ है। हां, जिस तरह जानवरोंको इस्तेमाल करनेमें बेरहमी ममनूह (निषिद्ध) है उसी तरह गैर-मुसल्मानोंको भी खामखाह अजीयत (कष्ट) पहुंचाना हरगिज मुस्ताहसन (प्रशंसनीय) नहीं। अलबत्ता, जहां मुस्लिम मफाद (हितों) और गैर-मुस्लिम मफादमें टक्कर हो वहां इस्लामी मफादके नशवोनुमाकी खातिर गैरमुस्लिम मफादको कुचलना और पामाल करना किसी तरह इन्साफके खिलाफ नहीं। मुर्गीका गला घोंटकर मार डालना ममनूह (निषिद्ध) है लेकिन इन्सानको अगर भूख लगी हो तो मुर्गीकी जिन्दगीका खयाल, उसके जिबह (वध) करनेमें रुकावट नहीं हो सकता।' यह है खाकसारोंके नेता अल्लामा मशरिकीकी नसीहत जो वे अपने मुरीदोंको हिन्दुस्तानमें और सारी दुनियांमें इस्लामी झण्डा उड़ानेके लिए दिया करते हैं। अगर पाकिस्तानका मतलब यही है, तब तो हिन्दू और सिख तो दूर रहे खुद मुसलमानोंके ही कई फिरके इस पाकिस्तानको कभी पसन्द नहीं कर सकते। आगे चल कर इस नसीहतको और भी संकुचित रूप दिया जा सकता है और मुसलमानोंके एक दलके हितोंके लिये दूसरे दलको भी इसी उसूलपर पामाल किया जा सकता है।

मि० जिन्ना कहते हैं कि हिन्दुस्तानके मुसलमान एक अलग राष्ट्र हैं। लेकिन उनके पास इसे पुष्ट करनेकी कोई वाजिब दलील नहीं है। दो राष्ट्रोंका सिद्धान्त बिलकुल गलत और झूठ है। हिन्दुस्तानके बहुसंख्यक मुसलमान हिन्दू से मुसलमान हुए हैं। पहले पहल जिन हिन्दुओंने लोभ, भय, या प्रेमसे इस्लाम धर्म ग्रहण किया, आजके अधिकांश मुसलमान उन्हींकी औलादें हैं।

महज धर्म तबादिला कर देनेसे ही तो वे पृथक राष्ट्र नहीं हो गये। बंगाली मुसलमान वही जबान बोलता है, जो बंगाली हिन्दू बोलता है। उनका खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल, आमोद-प्रमोद सब एक ही तरहका होता है। एक बंगाली हिन्दू या बंगाली मुसलमानको, एक पंजाबी हिन्दू या पंजाबी मुसलमानको सिर्फ चेहरा देख लेनेसे ही यह भेद नहीं जाना जा सकता कि कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान। अन्य प्रान्तोंके सम्बन्धमें भी यही बात लागू है। ब्रिटेनके विधानाचार्य प्रोफेसर कीथके कथनानुसार भारतके $\frac{4}{5}$ मुसलमान हिन्दूकी औलादें हैं। हिन्दू-मुसलमानोंकी एक राष्ट्रीयताकी छाप उनके चेहरेपर अंकित है जिसे कोई भी देख और समझ सकता है। हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र नहीं हैं। वे एक हैं—अविभाज्य हैं। जिन्हें ईश्वरने एक बनाया है उन्हें दो बना देनेकी ताकत मनुष्यमें नहीं है। मि० जिन्ना यह नहीं कहते कि कुछ हिन्दू बुरे हैं। उनका कहना तो यह है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें कोई एक रूपता है ही नहीं। मैं कहता हूं कि मि० जिन्ना जैसे ख्यालके लोग इस्लामकी कोई खिदमत नहीं कर रहे हैं। वे इस्लामके संदेश और उसकी शिक्षाका गलत अर्थ निकाल रहे हैं। इस्लामके वफादार बन्दोंको मि० जिन्ना जैसे नेताकी गलत रहनुमाईसे वक्त रहते सावधान हो जाना चाहिये।

सर शफात अहमदने श्री अतुलानन्द चक्रवर्तीकी 'भारतके हिन्दू और मुसलमान' नामक पुस्तककी भूमिका लिखी है। उसमें सर शफातने लिखा है:—'भारतीय संस्कृतिका इतिहास इस बातका प्रमाण है कि इस देशके साधारण जन-समूहकी भावनाओं और कल्पनाओंमें सदासे ही जो एकता रही है, और दो कौमोंकी भाषामें जो तारतम्य एवं एकरूपता देखी गयी है वह इस देशकी एक-राष्ट्रीय भावनाका जीता-जागता प्रतीक तथा सजीव चित्र है।

इस देशकी जैसी राष्ट्रीयता एवं एकता एशियाके दूसरे किसी देशमें नहीं पाई जाती। हमारे राजनीतिक मतभेद चाहे जो भी हों, लेकिन इस असलियतको कोई मिटा नहीं सकता कि हमारे ख्यालात, हमारे जजबात, हमारे जीवनकी परम्परा, हमारी आदतें और हमारे विचारोंका घेरा एक है। यह हमारी एकताकी शक्तिशाली पौराणिकता है। लगभग एक हजार वर्षसे यह एकरूपता हमारी नस-नस, रोम-रोम और खूनके जर्रे-जर्रेमें परिव्याप्त है। इसे कभी मिटाया नहीं जा सकता। यह अमर है, सत्य है।' सर शफात अहमदके ऐतिहासिक ज्ञानमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता। वे एक अधिकारसम्पन्न इतिहासकार हैं। साथ ही, उनके कथनका प्रमाण भी प्रत्यक्ष है। फिर भी मि० जिन्ना जैसे मुस्लिम नेता मुसलमानोंको अलग राष्ट्र मानते हैं और इस बिनापर भारतका अंग-छेद करके पाकिस्तानकी स्थापना करना चाहते हैं तो, यह उनकी नासमझी और भूल नहीं, बल्कि शरारत और देश-द्रोह है। मि० जिन्नाके सम्बन्धमें स्वर्गीय मि० एडविन मांटेगूने ठीक ही लिखा था कि—"Jinnah is a very clever man.........at the root of Jinnah's activities is ambition." याने—जिन्ना बड़े चालाक आदमी हैं...... उनकी कारगुजारियोंकी जड़में महत्वाकांक्षा छिपी है।' हमें इसकी शिकायत या मलाल नहीं है कि मि० जिन्ना ऐश्वर्य चाहते हैं और वे बहुत बड़े महत्वाकांक्षी हैं। हमें खेद तो इस बातका है कि वे भारतका अंगच्छेद करके अपनी अप्राप्य ऐश्वर्यलिप्साकी पूर्ति करना चाहते हैं। भारतके आठ करोड़ मुसलमानोंको अल्पसंख्यक बताना, और फिर यह कहना कि हिन्दू उन्हें निगल जायेंगे, सरासर अन्याय और नासमझी है। बड़े-बड़े तूफानों और बवण्डरोंसे टक्कर लेनेवाले इस्लामके मुरीदोंको, जिनके अन्दर जोश और जिन्दगी है, बहुसंख्यक जाति कैसे पामाल कर सकती है? मुसलमानोंको हिन्दुओंका भय

दिखाना और यह कहना कि इस्लामका अस्तित्व खतरेमें है, इस्लामकी तौहीन करना है तथा मुसलमानोंको कमजोर और बुजदिल बनाना है। मुसलमान एक अलग राष्ट्र तो होही नहीं सकते। मजहब और अल्पताके सिद्धान्तपर राष्ट्र-का निर्माण नहीं हुआ करता। राष्ट्रीयताके निर्माणका आधार कुछ और ही है और वह भारतके हिन्दुओं तथा मुसलमानोंमें सम्मिलित रूपसे मौजूद है।

सन् १९१९ ई०में मांटेगू-चेम्सफोर्ड शासन-सुधारके समय प्रोफेसर कीथने भारतकी राजनीतिक स्थितिका जिक्र करते हुए लिखा था—"मुसल-मानोंमें भी मुस्लिम-राज्य कायम करनेका उच्छृङ्खल प्रचार किया गया है और मुस्लिम राज्यकी एक योजना बनाई गई है जिसमें अफगानिस्तानसे लेकर उत्तर-पश्चिम भारतके वे प्रदेश शामिल हैं जहां इस्लामका जोर है, और मुसलमानोंकी आबादी ज्यादा है। यह योजना उपेक्षणीय नहीं है।" प्रोफेसर कीथके उपर्युक्त अवतरणसे स्पष्ट है, कि पाकिस्तानकी योजना काफी पुरानी है। समय-समयपर इस योजनामें तबदीलियां होती गई हैं।

पाकिस्तानके समर्थक भारतको तीन टुकड़ोंमें बांटना चाहते हैं। पहले टुकड़ेमें सीमाप्रान्त, पञ्जाब, काश्मीर, सिन्ध, बिलोचिस्तान और युक्तप्रान्तका एक भाग; दूसरेमें बङ्गाल और आसाम तथा तीसरेमें रियासत हैदराबाद। जरा मुस्लिम लीगका अनोखा मन्तव्य तो देखिये, एक ओर वह काश्मीर, पंजाब, सिन्ध और सीमाप्रान्त आदिको तो इसलिये पाकिस्तानमें शामिल करती है कि वहां मुसलमानोंकी आबादी अधिक है; और दूसरी ओर वह रियासत हैदराबादको, जहां ९० फी सदीसे भी अधिक हिन्दू रहते हैं, इसलिये लेना चाहती है कि वह मुस्लिम रियासत और नवाबी है!

पाकिस्तान योजना अर्थात् इस्लामी राज्यकी योजना कई ऐसे दिमागोंकी उपज है, जिनके दिलोंमें उलझे हुए मजहबी जजबातोंका तूफान भरा हुआ

था या भरा है। इस्लामी राज्यकी कई योजनायें अबतक प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें एक पंजाबी लेखककी योजना है, जिसने भारतको कई संघोंमें टुकड़े-टुकड़े कर लेनेकी तजवीज पेशकी है। पंजाबी लेखककी योजनामें हिन्दुस्तान संघ, हिन्दू-भारत संघ, राजस्थान सङ्घ, दक्षिण राज्य सङ्घ, और बङ्गाल सङ्घकी कल्पनाएं की गई हैं। (१) हिन्दुस्तान सङ्घमें सारा पञ्जाब आजाता है। सिर्फ अम्बाला डिवीजन, जिला कांगड़ा और होशियारपुर जिलेकी उन्नाव एवं गढ़शङ्कर तहसीलोंको बाद दे दिया गया है; क्योंकि इन जगहोंमें मुसलमानोंकी अपेक्षा हिन्दुओंकी आबादी ज्यादा है। सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, बिलोचिस्तान, काश्मीर, बहावलपुर, दीर, स्वात, चितराल, खानपुर, कलात, लाकबेला, कपूरथला और मलेरकोटला आदि इस सङ्घमें शामिल किये गये हैं। इसकी कुल आबादी लगभग ३ करोड़ ३० लाखके होगी, जिनमें मुसलमानोंकी आबादी ८२ फीसदी होगी।

(२) हिन्दू-भारत सङ्घमें संयुक्त प्रान्त, मध्य भारत, बिहार, बङ्गालके कुछ हिस्से, उड़ीसा, आसाम, मद्रास, बम्बई तथा कुछ भारतीय रियासतें होंगी। इस सङ्घकी कुल आबादी २१ करोड़ ६० लाखके करीब होगी, जिसमें हिन्दुओंकी संख्या लगभग ८३ फीसदी होगी। (३) राजस्थान सङ्घ, राजपूताना और मध्यभारतकी अनेक रियासतोंको मिलाकर बनाया जायगा। इस सङ्घकी जन संख्या १ करोड़ ७० लाखके करीब होगी। (४) दक्षिण भारत संघमें हैदराबाद, मैसूर, और बास्तर शामिल किये गये हैं, जिसकी कुल आबादी लगभग २ करोड़ १० लाख होगी। और हिन्दुओंकी संख्या फी सदी ८२ होगी। (५) बङ्गाल सङ्घमें पूर्वी बङ्गाल, गोआलपाड़ा, आसामका सिलहट जिला, त्रिपुरा तथा अन्य रियासतें होंगी। इसकी कुल आबादी ३ करोड़ १० लाख समझी गयी है, जिसमें मुसलमान ६६ फी सदी होंगे। इस योजनाके

अनुसार ४ करोड़ ८० लाख मुसलमान तो मुस्लिम सङ्घमें आ जायेंगे और शेष २ करोड़ ८० लाख मुसलमान तथाकथित हिन्दू सङ्घोंमें अपने भाग्यपर छोड़ दिये जायेंगे।

दूसरी योजना अलीगढ़-योजनाके नामसे मशहूर है। इस योजनाको अलीगढ़ विश्वविद्यालयके प्रोफेसर सैयद जफरुल हसन और मोहम्मद अफजल हुसेन कादरीने तैयार किया है। ये दोनों लेखक मुसलमानोंको पृथक् राष्ट्र मानते हैं और भारतका राजनीतिक विभाजन चाहते हैं। इनकी योजनाके मुताबिक पहला पाकिस्तान क्षेत्र होगा—जिसमें पञ्जाब, सीमाप्रान्त, सिन्ध, बिलोचिस्तान, काश्मीर-जम्मू, मण्डी, फरीदकोट, पटियाला, जिंद, कपूरथला, बहालपुर और नाभाको शामिल किया जायगा। इस पाकिस्तानकी कुल आबादी ३ करोड़ ९० लाख होगी, जिसमें इस्लाम धर्म माननेवालोंकी संख्या ६० फीसदीसे थोड़ी ज्यादा होगी; दूसरा बंगाल-क्षेत्र होगा। (हवड़ा और मिदनापुरको छोड़कर) इस क्षेत्रमें बंगाल, बिहारका पूर्णिया जिला और आसामका सिलहट जिला शामिल किया गया है। इस क्षेत्रकी कुल आबादी ५ करोड़ २० लाख होगी, जिसमें मुसलमानोंकी संख्या ५७ प्रति शत होगी। तीसरा हिन्दुस्तान-क्षेत्र होगा। इस क्षेत्रमें हैदराबाद, पाकिस्तान और बंगालको बाद देकर शेष सारे हिन्दुस्तानको शामिल किया गया है, जिसमें भारतीय रियासतें भी हैं। इस हिन्दुस्तान-क्षेत्रकी कुल आबादी २१ करोड़ ६० लाख होगी और इसमें मुसलमान ९ फीसदीसे अधिक नहीं होंगे। इसके अलावा हैदराबाद क्षेत्र होगा, जिसमें हैदराबाद, बरार और करनाटक शामिल होंगे। इस क्षेत्रकी जनसंख्या २ करोड़ ९० लाख होगी। इसमें मुसलमानोंकी आबादी ७ फीसदीसे कुछ अधिक है। दिल्ली एक अलग क्षेत्र होगा। इसमें मेरठ डिवीजन, रूहेलखंड डिवीजन और अलीगढ़ शामिल होंगे। इस क्षेत्रकी कुल

अबादी १ करोड़ २० लाख होगी। इसमें मुसलमान २८ फीसदी होंगे। दक्षिण-भारतमें एक मालाबार-क्षेत्र होगा, जिसमें मालाबार और दक्षिण कनाडाके हलके शामिल किये जायेंगे। मालाबार क्षेत्रकी आबादी ४० लाख होगी, जिसमें मुसलमान २७ फीसदी होंगे। अलीगढ़-योजनाकी एक उल्लेखनीय बात यह है कि उसकी नागरिक एवं राजनीतिक धारणा नाजी विचारोंके आधारपर कायम है। उदाहरणके लिये इस योजनामें ५० हजारकी आबादीतक या इससे अधिककी आबादीवाले शहरोंको 'स्वतन्त्र नगर' घोषित किया है। इस योजनासे भारतमें अनेक डैंजिग बन जायेंगे और इस किस्मके डैंजिगनुमा 'स्वतन्त्र शहरों' में कुल मिलाकर १३,८८,६९८ मुसलमान आबाद होंगे।

इस्लामी राज्यकी तीसरी योजना हैदराबाद विश्वविद्यालयके प्रोफेसर डा० लतीफने बनाई है; और यह योजना मुस्लिम लीगको भी मंजूर है। डा० लतीफने 'भारतकी मुस्लिम समस्या' (Muslim Problem in India) नामक एक पुस्तक लिखी है। इनकी योजना सांस्कृतिक विभाजन पर अवलम्बित है। मुसलिम लीगने इसी योजनाके आधार पर पाकिस्तानकी मांग पेश की है। डा० लतीफकी योजनाके अनुसार भारतका अङ्गच्छेद सांस्कृतिक क्षेत्रों (Cultural Zones) के आधार पर होगा। इसमें चार क्षेत्र मुसलमानोंके होंगे और ग्यारह क्षेत्र हिन्दुओंके लिये होंगे। भारतके देशी राज्योंको भी इनमें शामिल किया जायगा। हरेक क्षेत्र एक अलग राज्य होगा, और सबको मिलाकर एक अखिल भारतीय संघ होगा। डा० लतीफकी योजनामें मुस्लिम क्षेत्रोंको इस प्रकार बांटा गया है:—(१) सिन्ध, बिलोचिस्तान पंजाब, सीमाप्रान्त, काश्मीर और बहावलपुर (२) पूरबी बंगाल और आसाम (३) दिल्ली, आगरा, कानपुर और लखनऊ (४) हैदराबाद, बरार, कुरनूल, कुद्दापा, चित्तूर, उत्तरी अरकाट, चिङ्गलेपूत तथा मद्रास शहर।

हिन्दू क्षेत्रको निम्नलिखित ११ हिस्सोंमें विभाजित किया गया है:— (१) पश्चिमी बङ्गाल, (२) उड़ीसा (३) बिहार, संयुक्तप्रान्त, लखनऊ, दिल्ली, ब्लाककी रेखा तक,। इसमें मध्यभारतके कुछ राज्य भी शामिल होंगे। (४) राजपूताना और राजपूत रियासतें (५) गुजरात, काठियावाड़ (६) महाराष्ट्र (७) कनारा (८) आन्ध्र (९) तामिल (१०) मालाबार और (११) हिन्दू सिख क्षेत्र। उत्तर-पश्चिममें काश्मीरका कुछ भाग उसमें शामिल होगा। डा० लतीफकी योजनामें यह भी कहा गया है कि हिन्दू और मुस्लिम क्षेत्रोंमें रहनेवाले मुसलमानों और हिन्दुओंको मुवावजा देकर अपने-अपने क्षेत्रोंमें स्थानान्तिरित किया जायगा, जिसमें प्रत्येक क्षेत्रमें एक-सी संस्कृतिके लोग ही बसें। हरिजनोंको यह स्वतन्त्रता दी गई है कि वे चाहे जिस क्षेत्रमें बस जायें। इसका मतलब यह हुआ कि हरिजनोंकी कोई सांस्कृतिक स्थिति ही नहीं है। सर सिकन्दर हयातखांने भी एक योजना बनाई है। मगर इनकी योजनाको मुस्लिम क्षेत्रोंमें कोई खास महत्त्व नहीं दिया गया।

भारतका अगच्छेद (Vivisection) करनेके लिये मुस्लिम लीगने पाकिस्तानकी मांग तो पेश की, लेकिन यह मांग उसी तक सीमित न रही। मि० जिन्नाकी मांगका समर्थन करते हुए दक्षिण भारत लिबरल फेडरेशन (जस्टिस पार्टी) के अध्यक्ष श्री ई० वी० रामस्वामी नायकरने दक्षिण भारतमें द्रविड़ राज्यकी मांग उपस्थित की है। इस सिलसिलेमें दिये गये अपने एक वक्तव्यमें श्री नायकरने कहा कि जिस प्रकार हिन्दुओं और मुसलमानोंकी संस्कृतिमें भेद है उसी तरह हिन्दुओं और द्राविड़ोंकी संस्कृति एवं सभ्यतामें अन्तर है। द्रविड़ हिन्दू क्षेत्रोंमें रहकर सुख नहीं पा सकते। अतएव द्रविड़ोंका अलग राज्य होना चाहिये। ब्राह्मणोंके जुल्म और अत्याचारको द्रविड़

बरदाश्त नहीं कर सकते। वे ब्राह्मणोंके साम्राज्यवादका मुकाबला करनेको कृत-संकल्प हैं। इसी तरह गत ३१ मार्च १९४० को सोनीपतमें श्री शिवधान सिंहकी अध्यक्षतामें अखिल भारतीय जाट महासभाका जो अधिवेशन हुआ था उसमें सिख मिशनरी कालेज, अमृतसरके प्रिंसपल सर गङ्गासिंहने पाकिस्तान योजनाके मुकाबलेमें जाट-राज्यकी स्थापनाका प्रस्ताव पेश किया था। उन्होंने अपने भाषणमें कहा था—'यदि जाट साहस और संकल्पका परिचय दें तो मुझे विश्वास है ये जाट लोग दक्षिण-पूर्वमें गङ्गा नदीसे लेकर उत्तरमें झेलम नदी तक एक स्वतन्त्र जाट-राज्यकी स्थापना कर सकते हैं।' कहनेका मतलब यह कि पाकिस्तानकी देश-घातक योजनाने हिन्दुस्तानमें फूट और वैमनस्यका एक तूफान ला दिया है।

पाकिस्तानकी योजनाका प्रचण्ड विरोध भी किया गया और पाकिस्तान-विरोधी आन्दोलन धीरे-धीरे जोर भी पकड़ता जा रहा है। महात्मा गांधीने इसके विरोधमें १३ अप्रैल १९४० के 'हरिजन' में लिखा था कि—"अहिंसा-का पुजारी होनेके नाते मैं प्रस्तावित विभाजनका बलपूर्वक विरोध नहीं कर सकता, यदि भारतके मुसलमान वास्तवमें चाहें। परन्तु मैं भारतके विभाजन-के कार्यमें स्वेच्छासे भाग नहीं ले सकता। मैं उसका विरोध करनेमें प्रत्येक अहिंसात्मक उपायका इस्तेमाल करूंगा। विभाजन एक मिथ्यावाद है। मेरी आत्मा इसके खिलाफ बगावत करने लगती है कि हिन्दुत्व और इस्लाम दो विरोधी संस्कृति और सिद्धान्त हैं। मैं इस विचारके खिलाफ हूँ कि लाखों भारतीयोंने जो कल तक हिन्दू थे, आज सिर्फ इसलाम धर्म ग्रहण कर लेनेसे अपनी राष्ट्रीयताको भी बदल दिया है।" महात्मा गान्धीने पाकिस्तान योजना-के खिलाफ और भी कई लेख 'हरिजन' में लिखे और अकाट्य तर्कों द्वारा मुस्लिम लीग की इस खतरनाक मांगको निस्सार बताया है। हिन्दू और

मुस्लिम जनसमूहमें कोई फूट नहीं है; यह फूट तो सिर्फ ऊपरी सतह पर है और राजनीतिक नेता इससे फायदा उठाया करते हैं।

पाकिस्तानकी योजनाके खिलाफ अपनी राय जाहिर करते हुए माननीय श्री वी० एस० श्री निवास शास्त्रीने कहा था कि—"हिन्दुस्तानको दो राजनीतिक भागोंमें विभक्त कर देनेकी मांग, जिसके राष्ट्रीय हित पृथक् हों, बड़ी खतरनाक है। इसकी कल्पना मात्रसे हमारे सामने अंधेरा छा जाता है और हम समझ नहीं सकते कि फिर हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनका अगला कदम क्या होगा ?"

मौलाना अबुल कलाम आजादने पाकिस्तान योजनाका विरोध करते हुए बड़े मार्केकी बात कही है। मौलाना साहबने कहा है कि—"ऐसी कार्रवाई करनेका अधिकार तो सिर्फ उन्हीं मुसलमानोंको मिल सकता है जो मुसलमानों द्वारा चुने गये हों। इस मकसदके लिये मुस्लिम लीग कोई भी योजना पेश कर सकती है, लेकिन वह यह दावा नहीं कर सकती कि उसकी स्कीमको समस्त मुसलमानोंने अथवा बहुसंख्यक मुसलमानोंने स्वीकार कर लिया है।" मुस्लिम लीगकी पाकिस्तान योजनाका विरोध करनेके लिये अप्रैल १९४० के अन्तिम सप्ताहमें दिल्लीमें अखिल भारतीय आजाद मुस्लिम कान्फ्रेन्स की गई थी। इस कानफ्रेन्सके अध्यक्ष सिंधके प्रधान मन्त्री खाँ बहादुर अल्लाहबख्श थे। कान्फ्रेन्समें मजलिसे अहरार, जमायत उल-उलेमाए हिन्द बिहार-मुस्लिम-स्वतन्त्र दल, अंजुमने वतन, अखिल भारतीय सिया राजनीतिक सम्मेलन और राष्ट्रीय मुस्लिम आदि संगठनोंके प्रतिनिधियोंने काफी तादादमें भाग लिया था। इसमें विभिन्न प्रान्तोंके मुसलिम प्रतिनिधि इस प्रकार शामिल हुए थे:—संयुक्तप्रान्त—३५७; पंजाब—१५५; बिहार—७५; बंगाल—४५, मध्यप्रान्त—१८; मद्रास—५, उड़ीसा—५, अजमेर—१२, सीमाप्रान्त—

३५, सिंध—४२, बिलोचिस्तान—२५, बम्बई—४०, आसाम ५, दिल्ली—११२ और देशी राज्योंके १२। इस आजाद मुसलिम कान्फ्रेन्समें पाकिस्तान योजनाका विरोध किया गया। सम्मेलनने चार दिन तक अपना अधिवेशन करनेके बाद कारवाई समाप्त की। उपस्थित प्रतिनिधियोंने एक-एक प्रश्न पर उचित गम्भीरता एवं उत्तरदायित्वके साथ विचार किया था। सम्मेलनने अपने निर्णयमें मुसलमानोंके हितके साथ-साथ राष्ट्रीय हित पर भी पूरा ध्यान दिया। आजाद-मुसलिम कान्फ्रेन्सने, भारतके मुसलमानोंके सुयशमें जो धब्बा लगाया जा रहा है उसे धो डालनेके लिये पूरी चेष्टा की। वहांसे उठनेवाली आवाजमें बराबर यह बात सुनी गई कि भारतके मुसलमान इस देशको अपनी मातृभूमि मानते हैं और वे भारतीय होने तथा मुसलमान बने रहनेमें कोई भेद नहीं पाते। मि० जिन्नाके दो राष्ट्र वाले अभिनव सिद्धान्त और पाकिस्तान योजनाका प्रबल प्रतिवाद करते हुए आजाद-मुसलिम-कानफ्रेन्सने यह ऐलान किया कि भारत एक है और एक रहेगा। इसे विभक्त करनेकी योजना न केवल देश-हितके लिये, बल्कि स्वयं मुसलमानोंके लिये भी घातक है। हिन्दुस्तानके मुसलमान देशकी आजादीके जंगमें देशके साथ रहेंगे और हिन्दुस्तानको अपना प्यारा वतन समझ कर इसे आजाद करनेकी पूरी कोशिश करेंगे।

मुस्लिम लीगकी पाकिस्तान योजनाका विरोध न सिर्फ हिन्दुस्तानके, बल्कि हिन्दुस्तानके बाहरके मुस्लिम देशोंके मुसलमानोंने भी किया है। शिलांगके एक प्रमुख मुसलमान अफगानिस्तान, फारस, ईरान, ईराक और टर्की आदि मुस्लिम देशोंका भ्रमण करने गये थे। इन मुस्लिम देशोंमें उनके अनेक मित्र हैं। हिन्दुस्तानके बारेमें इन देशोंके लोग बड़ी दिलचस्पी रखते हैं और भारतीय स्वाधीनताके आन्दोलनसे उनकी पूरी सहानुभूति रहती है। इन

लोगोंने अपने शिलांगके मित्रके पास प्राइवेट तौरपर खत लिखकर मुस्लिम लीगकी पाकिस्तान योजनाका सख्त विरोध किया है। टर्की तथा अन्य मुस्लिम राष्ट्रोंके स्वाधीन मुसलमानोंने मुस्लिम लीगकी मांगपर बड़ा क्षोभ प्रकट किया है और मि० जिन्नाके नेतृत्वको भारतीय मुसलमानोंके लिये खतरनाक बताया है। लेकिन इन देशके मुसलमानोंको इस बातका सन्तोष है कि मुस्लिम लीग सारे भारतके मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व नहीं करती।

भारतको विभाजित करनेकी योजनाकी मध्य बिन्दु यही है कि बहुमतके प्रभुत्वसे अल्पमतकी रक्षा की जाय। मगर पाकिस्तान योजनासे यह सवाल हल होता नजर नहीं आता। विभाजित भारतकी प्रत्येक इकाईमें भी मजहबी जोश, कठमुल्लापन और धार्मिक वैमनस्य बना रहेगा। मुस्लिम लीगके मुताबिक ब्रिटिश भारतके आठ प्रान्तोंमें कांग्रेसी हुकूमतके अन्दर मुसलमानोंपर जुल्म ढाये गये और उनके स्वाभाविक हकको कुचला गया! लेकिन इसका क्या सबूत है कि भविष्यके सांस्कृतिक क्षेत्रोंमें,जहां अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक रहेंगे ही, इस तरहके जुल्म नहीं होंगे? क्या इन क्षेत्रोंमें, मुसलमान हिन्दुओं-पर और हिन्दू मुसलमानोंपर, जहां जिनका बल होगा, मजहबी जोशके बेहूदे नशेमें आकर मनमानी नहीं करेंगे? जो बात हिन्दू राज्यमें सच है वही मुस्लिम राज्यमें भी सच है। इस तर्कका जवाब अगर यह दिया जाय कि अल्पमतके स्वार्थों एवं अधिकारोंकी रक्षाके लिये विधानमें संरक्षणकी व्यवस्था रहेगी तो वह जवाब ही भारतके विभाजनकी मांगको निरर्थक सिद्ध कर देता है। यदि अल्पसंख्यक जातियोंको संरक्षण ही देना है, तो भारतको विभाजित करनेके बजाय इसके भावी विधानमें ऐसी व्यवस्था क्यों न की जाय, कि अल्पमतको बहुमतसे कोई भय न रहे और दो जातियां आपसमें मिलकर

अपनी मातृभूमिको आजाद करें—खुद आजाद हों और अपने इन्सानी अरमानोंको पूरा करें।

सर वजीर हसनने 'दी ट्वीनटीयथ सेंचुरी' में दो राष्ट्रोंकी कल्पनाका विरोध करते हुए लिखा था कि—"हिन्दुस्तानको हिन्दू-भारत और मुस्लिम भारतमें बांटनेकी स्कीम नासमझी और बेअक्लीका नमूना है। इसका कोई ठोस आधार नहीं है। आज यह कहना बिलकुल पागलपन और हास्यास्पद है कि हिन्दू और मुसलमान राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक उद्देश्योंके लिये एक राष्ट्र नहीं हैं। अगर अल्पसंख्यक और बहुसंख्यकका सवाल लिया जाय, तो मैं यह कहूंगा कि विभाजित हिन्दू और मुस्लिम भारतमें भी अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक जातियां मौजूद रहेंगी। लिहाजा हिन्दुस्तानको दो झगड़ालू पड़ोसी राज्योंमें विभाजित करनेके बजाय भावी शासन विधानमें अल्पमतके हकोंकी हिफाजतके लिये वाजिब व्यवस्थायें की जा सकती हैं।

अब इस मामलेपर एक मिश्री नेताकी राय देकर इस प्रसंगको यहीं खत्म कर दिया जाय। त्रिपुरी कांग्रेसमें मिश्रकी वफ्दिस्ट पार्टीका जो डेपुटेशन आया हुआ था उसके नेता मोहम्मद बेने कांग्रेसके खुले अधिवेशनमें बोलते हुए कहा था—"जिस देशके लोग अपनी आजादीके लिये लड़ रहे हों वे अपनी फूट बर्दाश्त नहीं कर सकते। फूटसे उनका मकसद कभी पूरा नहीं हो सकता। मिश्रमें मुस्लिम और ईसाई राष्ट्र थे। दोनों जातियोंमें काफी फूट थी। मगर जगलूल पाशाने हमें एकमें मिलाकर एक राष्ट्र बना दिया। हम वतनके लिये अपनी मजहबी बातोंको भूल गये और सब मिलकर मिश्री हो गये। मैं आशा करता हूं कि जिस तरह मिश्रमें अरबों और ईसाइयोंने आपसमें मिलकर साम्राज्यवादका मुकाबला किया था, उसी तरह हिन्दुस्तानके

लोग भी अपने भेद-भावोंको भूलकर एकताकी डोरीमें बँध जायेंगे और अपने देशकी आजादीके लिये कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर आगे बढ़ेंगे।” काश, हमारे साम्प्रदायिक नेता इस नसीहतके महत्वको समझते! आज हमारी वतनपरस्ती-का गला मजहबपरस्तीका खौफनाक शैतान अपने फौलादी चंगुलोंसे दबोच रहा है। अगर यही रवैया जारी रहा तो दुनियाकी दास्तानोंमें हमारी दास्तां तक भी न रहेगी। लिहाजा—

‘वतनकी फिक्र कर नादां, मुसीबत आनेवाली है!
तेरी बरबादियोंके मश्वरे हैं आसमानों में॥’

१

हिन्दुओंकी उपेक्षा—नीति

भारतकी वर्तमान साम्प्रदायिक समस्या और मजहबी झगड़ोंकी जिम्मेदारी ज्यादातर मुसलमानोंपर मढ़ी जाती है। हिन्दू सभा और आर्य समाजके प्रचारक तथा उपदेशक और हिन्दू एवं आर्य नेता मुसलमानोंको ही साम्प्रदायिक विद्वेषका उत्तरदायी ठहराते हैं और खुद दूधके धोये बननेका दम भरते हैं। लेकिन हिन्दू जातिकी गठनमूलक व्यवस्था और उपेक्षा नीतिपर अगर हम विचार करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि साम्प्रदायिक विद्वेषकी ज्वालाको जाग्रत करनेमें हिन्दुओंका हाथ किसीसे कम नहीं है। हिन्दू धर्म जहां अपनी उदारताके लिये प्रसिद्ध है वहां उसमें कट्टरता भी कम नहीं है। आधुनिक संसारके चार महान् धर्म हैं—ईसाई, हिन्दू, बौद्ध और इस्लाम। ये चारों धर्म हिन्दुस्तानमें प्रधान रूपसे मौजूद हैं। ईसाई मतकी चमकीली भौतिक सभ्यताने दुनियाके 'धर्म' का नाम बदल दिया है और इसकी वजहसे संसारकी प्रगतिमें महान् बाधा और अन्तर आ गया है। बुद्धके अनुयायी अहिंसा तत्व को भूलकर छिपकलियों तकका मांस खाने लगे हैं और ईश्वरवादी हिन्दुओंमें नास्तिकता जोर पकड़ने लगी है। इस्लामका भयंकर शौर्य खतम हो गया

है। हम यह मानते हैं कि इस्लामके बच्चेकी घूटीमें आज भी 'मजहब पर कुर्बान हो जाने' का गुरुमंत्र घोला जाता है और 'इस्लाम खतरेमें पड़ गया है' का नारा बुलंद करके मुसलमानोंके मजहबी जोशको उभाड़ा जाता है। लेकिन हिन्दुओंकी भावना कुछ और तीखी है। हिन्दू अपनेको दुनियाकी सर्वश्रेष्ठ कौम समझते हैं और उनका विश्वास है कि हिन्दू या आर्य ही संसारके गुरु हैं—सभ्यताके स्रष्टा और कर्णधार हैं। इसकी पुष्टिमें मैं अल-बरूनी जैसे प्रसिद्ध इतिहासकारका कथन पेश करूँ। महमूदके आक्रमणके समय हिन्दुओंका मनोविज्ञान और उनकी अवस्था क्या थी इसके बारेमें अल-बरूनी लिखता है कि:—"हिन्दुस्तान बहुत छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा हुआ है। सब राज्य स्वतन्त्र हैं और आपसमें युद्ध किया करते हैं। ब्राह्मण अपने अधिकारोंकी रक्षाके लिये इतने व्याकुल हैं और जाति-भेदका ऐसा द्वेष भाव फैला हुआ है कि वैश्यों और शूद्रोंको वेद पाठ करते देखकर ब्राह्मण उनपर तलवार लेकर टूट पड़ते हैं और उन्हें राज्य-कचहरीमें उपस्थित करते हैं। यहां उनकी जबान काट ली जाती है। ब्राह्मण सब प्रकारके राज्य-कर एवं राज्य-दण्डसे मुक्त हैं। हिन्दू बालायें सती हो जाती हैं। हिन्दू किसी देशको नहीं जानते, किसी जातिकी श्रद्धा और इज्जत नहीं करते। वे अपनेको और अपनी जातिको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं।" अलबरूनीके इस वर्णनमें हो सकता है कुछ अतिशयोक्तिसे काम लिया गया हो। लेकिन जिस समयका उल्लेख अलबरूनीने किया है वह मेगास्थनीज और फाहियान या हुएनसांगके समयका भारत न था। यह सच है कि हिन्दू सभ्यता एवं आर्य संस्कृति संसारके कोने-कोनेतक पहुंच चुकी थी और नयी दुनियाके मेक्सिको एवं पीरूतक उसकी संस्कृतिका सिक्का जम चुका था। मगर वह तभीतक हुआ जबतक हिन्दुओंने कट्टरता एवं उपेक्षानीति नहीं अख्तियार की थी। अलबरूनीके समयका भारत

धार्मिक झगड़ों और आपसी कलहका भारत था। हिन्दुओं और बौद्धोंमें सिरफुड़ौल हुआ करती थी। हिन्दू-धर्मकी अनेक शाखायें रक्तपात करने—परस्पर लड़ने-मरनेमें तल्लीन थीं। जिस समय मुहम्मद गोरीने भारतपर आक्रमण किया उस समय भारतमें चार प्रधान राजपूत वंश राज्य करते थे। (१)—दिल्ली और अजमेरमें चौहान, (२)—कन्नौजमें गहरवार, (३)—गुजरातमें सोलंकी और (४)—चित्तौड़में सीसोदिया। ये चारों राजवंश यद्यपि परस्पर सम्बन्धी थे मगर इनमें कट्टर शत्रुता थी और एक दूसरेका नाश देखना पसन्द करते थे। मुहम्मद गोरीने पृथ्वीराजपर जब अंतिम आक्रमण किया तो उस आक्रमणमें गुजरातके सोलंकियों और कन्नौजके जयचन्दने अपनी सेनाओंसे गोरीकी सहायता की थी जिससे पृथ्वीराजको पराजित करने और बंदी बनानेमें वह कामयाब हो सका।

मुझे यहां भारत और हिन्दू इतिहासके पन्नोंका लौटफेर नहीं करना है। मेरे कहनेका मतलब सिर्फ इतना ही है कि हिन्दुओंने मुसलमानोंको कभी अपनानेकी चेष्टा नहीं की। वे शुरूसे ही मुसलमानोंको विजातीय समझते रहे और उनसे नफरत करते रहे। मुसलमानोंको यवन और म्लेच्छ शब्दसे सम्बोधित किया जाता रहा। आज भी ऐसे कट्टरपंथी हिन्दुओंकी संख्या ज्यादा है जो मुसलमानोंका छुआ पानी पीना तो दूर रहा मुसलमानोंकी परछाईसे भी घृणा करते हैं। आम तौरपर हिन्दू इस बातकी शिकायत करते हैं कि मुसलमान बड़े कट्टर होते हैं। वे अपने मजहबी जोशमें मतवाले हैं। उनमें सहनशीलता और अन्य धर्मोंके प्रति उदारता नहीं होती। उनका धर्म अन्य धर्मावलम्बियोंपर जुल्म करनेकी और उन्हें इस्लामी तलवारके घाट उतारनेकी शिक्षा देता है। मगर हिन्दुओंसे यदि पूछा जाय कि आप लोगोंमें धार्मिक सहिष्णुता और धार्मिक उदारता कहां है तो इसका जवाब या तो वे झूठ बोलके देंगे अथवा

कुछ समझदार हुए तो चुप रह जायेंगे। पहले-पहल भारतमें प्रवेश करनेवाले आर्यआक्रमण-कारियोंने इस देशके आदिम निवासियोंपर कम जुल्म नहीं ढाये। द्रविणोंके साथ उनका बर्ताव कम अत्याचारमूलक नहीं रहा। भारतमें आर्य जातिके प्रवेश और विकासका इतिहास इस देशके आदिम निवासियोंके खूनकी सुर्खीसे लिखा हुआ है। आज, इस युगमें भी—इस गांधी-युगमें अछूतोंके साथ हिन्दुओंका व्यवहार कम रोमांचकारी और लोमहर्षक नहीं है। जब हिन्दुओंके ही साथ हिन्दुओंका यह दुर्व्यवहार है तो गैर-हिन्दुओंके साथ उनका व्यवहार कैसा होगा इसका अनुमान सहजमें ही किया जा सकता है। एक मुसलमान जब यह सवाल करता है कि—हिन्दू कौन हैं? तो इसका जवाब साधारणतौरपर एक हिन्दू यही देता है कि—हम चूंकि हिन्दूके घरमें पैदा हुए हैं इसलिए हम हिन्दू हैं और अपने वर्णके अनुसार हिन्दुओंमें हमारा यह, ऊंचा या नीचा, स्थान है। अगर एक मुसलमान मित्रताके नाते यह कह बैठे कि अच्छा, आप हिन्दू हैं तो बड़ी खुशीकी बात है। आइये, मेरे घरपर खाना तैयार है, हम आप मिलकर खाना खायें तो वह हिन्दू फौरन कह बैठेगा कि एक हिन्दू होकर मैं आपके यहां भोजन नहीं कर सकता। मुसलमानका छुआ मैं पानीतक नहीं पी सकता। हिन्दुओंका खान-पान, आचार-विचार, शादी-विवाह और पेशातक वर्ण-व्यवस्थाके अनुसार निश्चित होता है। व्यक्तिगत रूपमें हिन्दूको अपने मन मुताबिक कार्य करनेकी आजादी नहीं है। उसका जीवन उसके वर्ण-धर्मकी व्यवस्थासे बंधा हुआ है। एक हिन्दू अपने वर्ण और अपनी जातिके व्यक्तिके साथ मिल-जुलकर रह सकता है। यदि एक हिन्दूसे यह प्रश्न किया जाय कि वह किस धर्म या व्यवस्थामें विश्वास करता है तो इस प्रश्नका भी समाधानकारक उत्तर वह नहीं देता। हिन्दुओंके अनेक धर्म हैं और अनेक व्यवस्थायें। हिन्दुओंमें देवी-देवताओंकी भरमार है।

एक हिन्दू धर्मके किसी खास तत्वज्ञानके बंधनमें नहीं रहता। किसी देवता या किसी पुस्तककी पूजा किये बिना भी एक हिन्दू, हिन्दू रह सकता है। एक हिन्दू आस्तिक भी हो सकता और नास्तिक भी। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दुओंमें कोई ऐसी वाह्य-श्रृङ्खला नहीं है जिसमें वे परस्पर आवद्ध हों। कोई अदृश्य श्रृङ्खला भले ही हो सकती है जो समस्त हिन्दू जातिको एक सूत्रमें गूंथे हो। लेकिन हमें तो अदृश्यसे मतलब नहीं है। वर्तमान भौतिक संसारमें हमें प्रत्यक्ष दृश्यसे सम्पर्क रखना है।

हिन्दुओंकी उपेक्षानीतिसे मुसलमान अगर अपनेको अपमानित समझें और फिर अपमानके बाद उनमें घृणाकी भावना पैदा हो तो इसे हम अस्वाभाविक नहीं कह सकते। और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंमें वैर-भाव बढ़ाकर, दो विरोधी जातियोंको आपसमें लड़ाकर अगर एक तीसरी ताकत शासन करे और फायदा उठाये तो कलुषित राजनीति या कूटनीतिके अनुसार हम इसे बुरा नहीं कह सकते। यह तो एक शासन नीति है। भारतमें आनेके साथ ही साथ अंग्रेजोंने इस नीतिसे काम लेना आरम्भ किया था और आजतक फूट डालकर शासन करनेका जो ब्रह्मास्त्र उनके तर्कसमें है उससे काम ले रहे हैं। मेजर जनरल सर लामनेल स्मिथने १८३१ ई० की एक जांच कमेटीके सामने गवाही देते हुए कहा था कि:—"The prejudices of sects and religions by which we have hitherto kept the country, the Musalmans against Hindus and so on......!" याने— "अभीतक हमने साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपातके द्वारा ही इस मुल्कको अपने कब्जेमें रखा है और हिन्दू-मुसलमानों तथा इसी प्रकार अन्य जातियोंको आपसमें लड़ा रखा है.......!" अंग्रेज शासक अपनी इस नीतिपर तबतक कायम रहेंगे और हमपर हुकूमत करते रहेंगे जबतक हिन्दुओं और मुसलमानोंमें घृणा एवं

बैरकी भावना मौजूद रहेगी। यह सच है कि हिन्दू-मुसलमानोंको विजातीय विधर्मी, यवन और म्लेच्छ समझकर उनसे घृणा करते हैं, उनके छू जानेपर अपनेको अपवित्र समझ बैठते हैं। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप मुसलमान हिन्दुओं-से बैर रखते है, उन्हें अपना शत्रु समझते हैं और अपने अस्तित्वके लिये हिन्दुओंको खतरनाक समझते हैं। आजकी परिस्थिति यह है कि हिन्दू नेता हिन्दुओंको मुसलमानोंसे अधिक घृणा करनेके लिये उभाड़ते हैं और मुस्लिम नेता मुसलमानोंको हिन्दुओंसे बैर करना और उन्हें एक बला समझनेका जोश पैदा करते हैं। हिन्दू भारतवर्षमें हिन्दू राज्य देखना चाहते हैं और मुसलमान हिन्दुस्तानका अंगच्छेदकर अपना अलग राज्य—पाकिस्तान बनाना चाहते हैं। इसी कशमकशमें हिन्दुस्तानकी आजादीका गला घुट रहा है। हमारी इस मजहबी फूटका फायदा हमारे अंग्रेज शासक उठा रहे हैं?

हिन्दू अगर यह चाहें कि भारतके ९ करोड़ मुसलमानोंको देशसे निकालकर अरबके रेगिस्तानमें भेज दिया जायगा तो यह उनकी बहुत बड़ी भूल है—भूल ही नहीं गुस्ताखी भी है। हिन्दुओंके चाहनेसे भी यह नहीं हो सकता। यह एक गैरमुमकिन बात है। हिन्दुओंको यह भूल जाना चाहिये कि उनकी संस्कृति, समाज और कलापर इस्लामका प्रभाव नहीं पड़ा। वे इस्लामसे घृणा करते रहे, मुसलमानोंको नफरतकी निगाहसे देखते रहे और अपनेको संसारकी सर्वश्रेष्ठ जाति समझकर दूसरोंका तिर-स्कार करते रहे। लेकिन उनकी इस चिरनिद्रित उपेक्षा-नीतिके बावजूद भी भारतपर इस्लामी सत्ता कायम हुई, मुसलमान शासकोंने शताब्दियों तक शासन किया और इस मुल्कको अपना मुल्क समझकर वे यहां आबाद हो गये। हिंदू सङ्गठनकी आवाज उठानेवाले अगर यह स्वप्न देखते हों कि हिन्दुओंको सङ्गठित करके वे फिर हिन्दू-राज्य स्थापित कर लेंगे तो यह उनकी भयङ्कर

भूल है—मृगमरीचिका है। हिन्दुस्तानमें हिन्दू-राज्यका भव्य भवन अथवा मुस्लिम सल्तनतकी आलीशान इमारत अब नहीं खड़ी हो सकती। हम हिन्दू सङ्गठन या मुस्लिम सङ्गठनके विरोधी नहीं हैं बशर्ते कि यह सङ्गठन आपसमें मार-काट करनेके लिये न हो। लेकिन आज कलके जातीय सङ्गठन कुछ इसी तरहके मकसदोंको लेकर हो रहे हैं। एक ओर मुसलमान खाकसारोंके लश्कर बना रहे हैं, तो दूसरी ओर हिन्दू राम-सेनाके सङ्गठनमें व्यस्त हैं। एकके हाथमें अगर बेलचा है तो दूसरेके हाथमें त्रिशूल नजर आ रहा है।

हिन्दू समाजपर मुस्लिम शासनका क्या प्रभाव पड़ा इसका उल्लेख सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर यदुनाथ सरकारने निम्नलिखित शब्दोंमें किया है— × × अकबरके सिंहासनपर बैठनेके समयसे मुहम्मद शाहकी मृत्यु तक (१५५६—१७४९) मुगल शासनके दो सौ वर्षोंने समस्त उत्तरी भारत और अधिकांश दक्षिणी भारतको भी एक सरकारी भाषा, एक शासन पद्धति, एक समान सिक्के और हिन्दू पुरोहितों तथा ग्रामीणोंको छोड़कर जन साधारणको एक भाषा प्रदान की। जिन सूबोंपर मुगल दरबारका दूरका प्रभाव था—याने जो मुगल दरबार द्वारा नियुक्त किये गये सूबेदारोंके आधीन थे, चाहे वह हिन्दू-राज्य रहे हों या मुस्लिम, न्यूनाधिक मुगलोंकी शासन प्रणालियों, सरकारी परिभाषाओं, दरबारी शिष्टाचार और उनके सिक्कोंका अनुकरण करते थे।" इसमें शक नहीं कि जिस तरह हिन्दू समाजपर मुस्लिम संस्कृति और मुस्लिम सम्पर्कका प्रभाव पड़ा उसी तरह मुसलमानोंपर भी हिन्दू संस्कृतिकी गहरी छाप लगी है। किसी भी जातिकी सभ्यता एवं संस्कृतिकी मौलिकता एक होती है; लेकिन उसके वाह्य स्वरूपमें विभिन्न जातियोंके सम्पर्कसे परिवर्तन हुआ ही करते हैं। इसलिये जो लोग सभ्यता एवं संस्कृतिके मिट जाने या अशुद्ध होनेका खतरा देखा करते हैं वे दरअसल

सभ्यता और संस्कृतिके असली स्वरूप और उसके निरन्तर परिवर्तित होकर परिष्कृत होनेका अर्थ नहीं समझते। संसारकी सजीव जातियोंकी सांस्कृतिक मौलिकताओंको कोई मिटा नहीं सकता और परिवर्तन एवं सम्मिश्रणको कोई रोक नहीं सकता।

हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म और हिन्दू सङ्गठनके नामपर आंसू बहानेवालोंका ध्यान हम हिन्दू जातिकी प्राचीन अवस्थाकी ओर खींचना चाहते हैं। सातवीं शताब्दीके मध्यमें अंतिम हिन्दू सम्राट हर्षवर्धनकी सत्ता समाप्त हुई और शीघ्र ही सारे भारतकी शक्ति छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बिखर गयी। पश्चिमसे आगे बढ़कर राजपूतोंने उत्तर-पूर्व और मध्य-भारतमें छोटी छोटी अनेक रियासतें पैदा कर लीं। कुछ मिश्रित जातियोंने भी अपनेको राजसत्ता कायम करनेके लोभमें राजपूत कहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार भारतपर मुसलमानोंके आक्रमणसे पूर्व, पञ्जाबसे दक्षिण और बङ्गालसे अरब सागर तक लगभग समस्त प्रदेशोंपर प्रायः राजपूतोंका अधिकार था जो अनेक अवांछनीय भागोंमें विभक्त थे। ये तमाम छोटी-छोटी राजपूत रियासतें आपसमें अधिकार एवं तथाकथित सम्मानके नामपर लड़ती-झगड़ती रहती थीं। परस्पर कोई मेल न था और न कोई ऐसी बलवती केन्द्रीय सत्ता ही थी जो इन लड़ाकू रियासतों पर नियंत्रण रखकर शासनकी एकरूपता कायम रखती। मगध पाटलीपुत्र आदिके साम्राज्य लुप्त हो गये थे। वैशाली, कुशीनगर, कपिलवस्तु और अवन्ती आदि प्रसिद्ध बौद्ध नगरोंके खँडहरोंपर कौवे और कबूतर बसेरा लिया करते थे। राजनीति और धार्मिक जीवनके साथ उस कालके हिन्दुओंका नैतिक जीवन भी नष्ट हो गया था। बौद्धों और हिन्दुओंमें कलह और द्वेषकी आग जल रही थी। बौद्ध धर्मने शुरू-शुरूमें संस्कृतका माध्यम छोड़ कर पाली भाषाको अपने धर्मका माध्यम बनाया। धीरे-धीरे वैष्णव, शैव और तंत्र सम्प्रदायोंने सङ्गठन

किया और बौद्ध मतको प्रबल धक्का देकर भारतसे निकाल बाहर कर दिया। इस घटनाके बाद हिन्दू धर्म फिरसे भारतमें स्थापित हुआ, पर वह बहुत ही अपूर्ण और भ्रामक था। कुछ थोड़ेसे उच्च श्रेणीके लोग उपनिषद् और दर्शन शास्त्रके ज्ञाता बच रहे थे। जाति-भेद खूब जोरोंसे बढ़ रहा था। ब्राह्मण अत्यन्त प्रबल हो गये थे। शूद्रोंपर जुल्म और अत्याचार हो रहे थे। इस प्रकार भारतके सामूहिक जीवनका विकास असम्भव हो गया था। पण्डों और पुरोहितोंने असाधारण अधिकार पा लिया था। असंख्य देवी, देवता, मूर्ति, शक्ति, काली, भैरव, रुद्र और भूत-प्रेतोंका पूजन तथा जप, तप, हवन, यज्ञ, पूजा, पाठ, ब्राह्मणोंको दान, तीर्थ, यात्रा, यंत्र, तंत्र और आडम्बरमय कर्म-काण्डको धर्म माना जा रहा था। जनतामें अशिक्षा और अन्ध-विश्वास फैला हुआ था। छुआ-छूतका भूत सबके सिरोंपर सवार था। बड़े-बड़े दर्शनशास्त्री और तत्त्वज्ञान जाननेवाले ब्राह्मणों तथा विद्वानोंकी कद्र कम हो गई थी। बौद्धों को कत्ल कर दिया गया बौद्ध विहार उजाड़ दिये गये थे जैनियोंसे नफरत की जाती थी और कापालिक नर-मुण्डकी माला गलेमें लटकाये घूमा करते थे। अलबरूनीने लिखा है कि:—"× × शैव और वैष्णव-सम्प्रदायोंके सिवा शनि, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्म, इन्द्र, अग्नि, स्कन्द, गणेश, यम, कुबेर आदिकी मूर्तियां भी भारतमें पूजी जाती हैं। बौद्ध और जैनोंने मांस मदिराका प्रचार बन्द कर दिया है। परन्तु कापालिकों और शाक्तोंने इन चीजोंको धर्मका प्रधान अङ्ग बना दिया है।" ऐसा समय था जब भारतमें इसलामका प्रवेश हुआ। उस समय हिन्दुस्तानकी सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति अत्यन्त छिन्न-भिन्न और कमजोर हो गई थी। समाजमें दलित वर्गके लोगोंके लिये कोई स्थान नहीं था। उस समय बिना किसी बल-प्रयोगके ही इस्लामके प्रचारकोंने हिन्दुओंको मुसलमान बना लिया। इस्लामके साधुओंके रहन-सहन और

विचारोंपर बौद्धों और हिन्दू दार्शनिकोंका प्रभाव पड़ा था। इसीलिये तत्का-लीन हिन्दू-दलितोंके लिये वे अति अनुकूल और प्रिय सिद्ध हुए। यही कारण था कि समस्त भारतमें इस्लामका प्रचार बे रोक-टोकके फैल गया और लाखों मनुष्य मुसलमान हो गये, जिनमें अधिकांश संख्या उन छोटी कहीजानेवाली जातिवालोंकी थी जो वर्ण-व्यवस्था एवं जात-पांतके ढकोसलेके कारण अत्यन्त तिरस्कृत थे। ब्राह्मणोंके अधिकार और उनकी शक्तियां असीम थीं। वे जिस भांति अछूतोंसे घृणा करते थे उसी प्रकार नव-मुसलमानोंसे भी। इन उच्च जातिके हिन्दुओंपर तब कहर पड़ा जब इस्लाम नंगी तलवार लेकर तूफानकी तरह बल पूर्वक भारतमें घुसा। तेरहवीं शताब्दीके अन्तसे लेकर सोलहवीं शताब्दीके आरम्भ तक भारतमें तलवारकी हुकूमत रही—रक्तपातका तूफानी साम्राज्य रहा।

इस्लामी साम्राज्यकी नींव पुख्ता होते ही समाजमें एक भीतरी इन्किलाब पैदा हुआ। भारतके शिल्प, तिजारत, कला-कौशल, चित्रकला, विज्ञान-वस्तु और स्थापत्य कलापर इस्लामकी गहरी छाप पड़ी। लोगोंका साधारण जीवन भी इस्लामी सभ्यताकी छापसे अछूता न रहा। दो सभ्यताओंमें टक्कर हुआ और परिणाम स्वरूप एक मिश्रित सभ्यताका विकास आरंभ हुआ। हिन्दुओंकी उपेक्षा नीति तो बनी रही मगर उनका विरोध खतम हो गया। मुसलमान सारे भारतमें बस गये और एक ही पीढ़ीमें वे भारतीय बन गये—उनकी संस्कृतिका प्रभाव भारतीय संस्कृतिपर भी होने लगा। मुगल साम्राज्यमें भारतकी असाधारण उन्नति हुई। मुगलोंने भारतमें सच्चे सम्राटोंकी तरह शासन किया। भारतकी स्थापत्य कलापर बौद्धों और हिन्दू आदर्शों की प्रधा-नता रही। भारतमें मुसलमानोंके बसते ही इसपर इसलामी आदर्शका प्रभाव पड़ा और तीनों आदर्श मिल गये और इस कलामें एक तीसरी नवीनता पैदा

हो गई। चित्रकला, वैद्यक, ज्योतिष और गणितने भी मुगल साम्राज्यमें खूब उन्नति की। महाराज जयसिंहने हिन्दू पञ्चाङ्गोंका सुधार करनेके लिये जयपुर, मथुरा, दिल्ली और काशीमें ज्योतिष यन्त्रालय बनवाये। कीमियागिरी के बहुतसे मूल्यवान नुसखे, तेजाब, रसायन, कागज बनाना, कलई करना और चीनी मिट्टीका उपयोग भारतमें मुसलमानोंसे प्रचलित हुए। कहनेका अभिप्राय यह कि शताब्दियोंतक भारतमें अराजकता रहनेके बाद मुगलोंके कालमें शिल्प, वाणिज्य एवं तरह तरहके कला-कौशलका विस्तार हुआ और हिन्दुओंकी कट्टर धर्मान्धतामें भी भारी परिवर्तन हुए। सम्राट अकबरने बड़े विवेक और सहनशीलतासे भारतीय धर्मोंका अध्ययन किया। अपनी धार्मिक संकीर्णताको त्यागकर बड़ी उदारताके साथ शासन किया।

नेन्स नामक एक अंग्रेज ग्रन्थकारने लिखा है कि:—"वह (अकबर) स्पष्ट ही एक ऐसा व्यक्ति था जो अपने साम्राज्यके अन्तर्गत परस्पर विरोधी जातियों और श्रेणियोंको एक प्रबल एवं संयुक्त राष्ट्र बना देनेके लिये पैदा हुआ था।'

अकबर बड़ा दूरदर्शी शासक था। हिन्दू मुस्लिम वैमनस्यकी जड़को ही वह मिटा देना चाहता था। इसी ख्यालसे उसने दीने-इलाही धर्मकी नींव रखी मगर इसमें वह कामयाब न हुआ। उसने लड़ाईमें गिरफ्तार किये गये कैदियोंको गुलाम बना लेनेकी पुरानी प्रथा बन्द कर दी। उसने हिन्दू-मुस्लिम विवाहोंकी मर्यादा डाली। अकबरके बाद जहांगीर और शाहजहांने भी इसी मार्गका अनुसरण किया किन्तु औरंगजेबने इन सारे सुधारोंको अपनी कट्टरता और सन्दिग्ध स्वभावके कारण चौपट कर दिया और वही मुगल साम्राज्यकी जड़का दीमक बनकर उसे इतना कमजोर बना दिया कि बाबर, हुमायूं, अकबर, जहांगीर और शाहजहांका पाला-पोपा साम्राज्य औरंगजेबके देखते ही देखते

नष्ट हो गया। मुगल सम्राटोंके समय हिन्दुस्तानमें ऐसे अनेक साधु-संत हुए जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकताको धार्मिक रूप दिया। लेकिन इसका जिक्र मैं आगे चलकर करूंगा। इस स्थानपर तो मुझे यह साबित करना है कि हिन्दुओंकी उपेक्षा जनित नीति, हिन्दू-मुस्लिम एकताके मार्गमें कितनी भयंकर साबित हुई।

यदि अल्पसंख्यक मुसलमान अपनी मजहबी कट्टरताके लिये दोषी हैं तो बहुसंख्यक हिन्दू अपनेको श्रेष्ठ समझनेकी घातक असहिष्णुताके लिये कम दोषी नहीं हैं। मुसलमान भारतमें बस गये और यहींके उपेक्षित एवं तिरस्कृत हिन्दुओंको अपनेमें मिलाकर अपनी आबादी भी बढ़ा लिये। लेकिन हिन्दुओंमें चेतना नहीं आयी; वे अपने बड़प्पनमें ही फूले रहे। मुसलमानोंसे वे सदैव नफरत करते रहे। आज इस बीसवीं शताब्दीमें भी इस—विश्व-बंधुत्व (Universal Brotherhood) शाश्वत युगमें भी हम हिन्दू मुसलमानोंसे घृणा करते हैं। उनका छुआ पानी पीना भी धर्म-विरुद्ध समझा जाता है। अगर किसी हिन्दूके घरपर कोई मुसलमान मेहमान बनकर आ जाता है तो उसे खिलाने-पिलानेके लिये जो बर्तन इस्तेमाल किये जाते हैं उसे घरमें वापस नहीं लिया जाता और वह बर्तन महज इसलिये अपवित्र समझा जाता है कि उसे मुसलमानने इस्तेमाल कर लिया है। मुसलमानको हिन्दूके यहां खाने पीनेमें और रहनेमें कोई एतराज नहीं होता मगर हिन्दूको मुसलमानके यहां रहना दुस्वार हो जाता है—वह मुसलमानके घर रहकर अपने हलकके नीचे कुछ उतार नहीं सकता चट धर्म-भ्रष्ट हो जानेका खतरा मौजूद हो जाता है। अगर सच कहा जाय तो आचार-विचार और सामाजिक व्यवहारकी दृष्टिसे हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमान कहीं ज्यादा उदार और माडरेट हैं। उनका धर्म छूई मुईकी तरह चट मुर्झा जानेवाला नहीं है। वे दीनको एक पुख्ता

चीज समझते हैं जो दिल, दिमाग और ईमानसे ताल्लुक रखता है। लेकिन आजके हिन्दू धर्मके इस तात्विक आदर्शको भूल गये हैं। स्वामी विवेकानंदके शब्दोंमें हिंदुओंका धर्म चूल्हे-चकी और 'मुझे छुओ नहीं' (Touch me not) तक ही सीमित हो गया है।

अब हम हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेके राजनीतिक कारणोंपर विचार करेंगे। हिन्दू-महासभाके नेताओं और कार्यकर्त्ताओंकी गतिविधि पर भी यदि गौर किया जाय तो मालूम हो जायगा कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके रास्तेमें कितनी बड़ी बाधक हो रही है। मैं इसका जिक्र भारतमें राष्ट्रीय आन्दोलनके आरम्भकाल-से करूंगा। गत यूरोपीय महायुद्धके पश्चात् गणतन्त्रमूलक आदर्शोंसे प्रभा-वित होकर सम्राट्की सरकारने यह ऐलान किया था कि—ब्रिटिश साम्राज्यके एक अभिन्न अंगके रूपमें, इस बातको मद्दनजर रखकर कि भारत धीरे-धीरे उत्तरदायी सरकार प्राप्त करे, भारतमें ब्रिटिश सरकारकी नीति स्वायत्त-शासन-का क्रम-विकास करना है। तत्कालीन भारत सचिव मि० मांटेगू और वाय-सराय लार्ड चेम्सफोर्डने, भारतकी राजनीतिक परिस्थितिका अध्ययन किया और ब्रिटिश साम्राज्यके हितको ध्यानमें रखकर १९१८ ई०में 'मांटेगू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट' तैयार की और तदनुसार १९१९ ई० में एक विधान बनाया गया। उक्त रिपोर्टके रचयिताओंने इस देशकी साम्प्रदायिक समस्याओंका जिक्र करते हुए स्पष्ट लिखा है— "× × स्वायत्त-शासनके सिद्धान्तका विकास करनेमें यह एक बड़ी भयंकर बाधा है।" इस कानूनके अनुसार सीटोंका बटवारा साम्प्र-दायिक सिद्धान्तके आधारपर किया गया। फलतः इस १९१९ के विधानने भारतीय मतदाताओंको मुस्लिम एवं गैरमुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रोंमें विभाजित कर दिया और लखनऊ पैक्टका सहारा लिया गया। भारतमें जब राष्ट्रीय आन्दोलनका सूत्रपात हुआ तो प्रथम बीस-पचीस वर्षोंतक वह एकान्तरूपसे

हिन्दू-राष्ट्रीयताका आन्दोलन रहा। उस समय मुसलमान शिक्षाकी दृष्टिसे बहुत पीछे रहे। सर सैयद अहमद जैसे कुछ मुस्लिम नेताओंने यह सिद्धान्त कायम किया कि मुस्लिम नेताओंको अपनी सारी ताकत मुसलमानोंमें शिक्षा-प्रचार करनेमें लगानी चाहिये और उस राजनीतिक आन्दोलनसे अलग रहना चाहिये जिसपर हिन्दुओंका प्रभुत्व और नेतृत्व है।

आरम्भमें राष्ट्रीय आन्दोलनका नारा 'वेदोंकी ओर लौटो' (Back to the Vedas) था। इसका निहित अर्थ न केवल प्राचीन हिन्दू संस्कृतिको पुनर्जीवित करना था बल्कि ब्राह्मणोंकी आक्रमणमूलक सत्ताको फिरसे हासिल करना भी था। उस समयके हिन्दू नेता अपनी तकरीरोंमें जब यह इजहार करते थे कि भारतके धरातलको विदेशियोंसे मुक्त करना होगा और उन्हें इस देशसे निकाल बाहर करना होगा तो अंग्रेजोंके साथ-साथ इसका मतलब मुसलमानोंसे भी था। क्योंकि हिन्दू मुसलमानोंको हमेशा ही विदेशी, लुटेरा और अत्याचारी समझते रहे हैं। उस समयके हिन्दुओंने अपनी विषाक्त संकीर्ण नीतिके शिकार होकर मुसलमानोंको कभी अपना देशवासी और भाई नहीं समझा। ऐसी अवस्थामें मुसलमानोंके लिये यह स्वाभाविक था कि वे हिन्दुओंसे भयभीत होते और हिन्दुओंके आन्दोलनसे दूर रहकर अपने अस्तित्वकी रक्षा करते। मुसलमानोंके दिमागमें मुगल-कालीन भारतका नक्शा खिंचा था। सुनहले वैदिक कालका जो महत्त्व हिन्दुओंके लिये है वही महत्त्व मुसलमानोंको मुगल कालका है। मुगलकालीन भारत मुसलमानोंका एक स्वर्ण-युग रहा है। उस समय वे हिन्दुस्तानके प्रधान शासक रहे हैं। उसे वे भूल नहीं सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानोंका झुकाव अंग्रेजोंकी ओर हुआ। समझदार मुसलमान इस बातको तब भी समझते थे और अब भी समझते हैं कि हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी सल्तनतको अंग्रेजोंने नहीं

बल्कि हिन्दुओंने—मराठोंने मिटाया है। हिन्दुस्तानको अंग्रेजोंने हिन्दुओंके अधिकारसे छीना है, मुसलमानोंके अधिकारसे नहीं। क्लाइवके जमानेमें मुस्लिम सल्तनतका चिराग प्रायः गुल हो चुका था। मराठे शक्तिशाली बन बैठे थे। मराठा साम्राज्य कायम करनेकी विफल चेष्टायें हो रही थीं। अंग्रेजोंके आ जानेसे तो मुसलमानोंको एक राहत-सी मिली थी। मुसलमानों-का झुकाव अंग्रेजोंकी तरफ होनेकी वजह यह नहीं थी कि वे अंग्रेजोंसे प्रेम करते थे बल्कि असलियत यह थी कि हिन्दू-राज्यकी अपेक्षा अंग्रेजी राज्यसे उन्हें कम भय था। राष्ट्रीय आन्दोलनके आरम्भमें मुसलमानोंके अलग रहनेका यही प्रधान कारण था। यूरोपकी ताकतें टर्कीके साथ जो बेइंसाफी कर रही थीं और टर्की जिस तरह 'यूरोपका मरीज' (Sick man of Europe) बना हुआ था उसे भारतके मुसलमान महसूस करते थे। किन्तु उसकी प्रति-क्रिया यह नहीं हुई कि भारतीय मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलनमें शामिल होते बल्कि उसकी प्रतिक्रिया "पैन इस्लामिज्म" के रूपमें हुई। १९१२ ई० में ईसाई बालकन राष्ट्रोंने टर्कीके खिलाफ जो जहाद किया था उसमें भारतके मुसलमानोंकी सहानुभूति टर्कीके खलीफाकी ओर थी। उस समय ब्रिटेनकी तटस्थता और अप्रत्यक्ष रूपसे ब्रिटेनकी टर्की-विरोधी नीतिसे भी भारतके मुसलमान क्षुब्ध हो उठे थे। लेकिन १९१४ ई० के महायुद्धमें भारतके मुस-लमान ब्रिटेनके वफादार रहे। भारतीय मुसलमानोंको उम्मीद थी कि लड़ाईके बाद टर्कीके साथ इंसाफ किया जायगा। मगर उनकी यह उम्मीद जब पूरी न हुई तो ब्रिटेनसे वे और नाराज हो गये। फलतः भारतमें खिलाफत आन्दोलन शुरू हुआ और कांग्रेसके इतिहासमें पहली बार मुसलमानोंने क्रियात्मक रूपसे कांग्रेसका साथ दिया तथा १९२१-२२ में महात्मा गांधीके नेतृत्वमें क्रिया-त्मक रूपसे असहयोग आन्दोलनमें भाग लिया। लेकिन खिलाफत आन्दोलन-

से भी हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं हुई। १९२४ ई० में मुस्तफा कमालपाशाने जब खलीफाको टर्कीसे निकाल बाहर किया और टर्कीमें प्रजातन्त्र राज्य कायम किया तो भारतका खिलाफत आन्दोलन भी ठंडा पड़ गया और अंतमें इसी खिलाफतने साम्प्रदायिक आन्दोलनका रूप धारण कर लिया। खिलाफतके प्रभावशाली मुस्लिम नेता साम्प्रदायिक नेतृत्व करनेमें जुट गये और जिस प्रकार हिन्दू महासभा, मुसलमानोंके खिलाफ घृणाका प्रचार कर हिन्दू संगठन कर रही थी उसी प्रकार खिलाफत आन्दोलनके नेता भी हिन्दुओंके विरुद्ध मुसलमानोंका संगठन करनेमें लग गये। हिन्दू बहुसंख्यक होकर भी मुसलमानोंसे भय खाने लगे। सारे देशमें हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यकी चिनगारियां छिटक गईं। १९२१ ई० के मोपला विद्रोहने इस आगको और भी भड़का दिया। हिन्दू और मुस्लिम नेता राजनीतिक हैसियतके लिये, कौंसिलोंमें सीटोंके लिये और सरकारी नौकरियोंके लिये लड़ने-झगड़ने लगे। इस साम्प्रदायिक वैमनस्यके कारण कांग्रेसकी धाक कुछ धीमी पड़ गई। इसी समय, १९२४ के लगभग कुछ महाराष्ट्री हिन्दू नेता कांग्रेससे फूट गये और 'प्रतिसहयोगी दल' (Responsivist Party) कायम किया। प्रतिसहयोगी दल कायम करनेवालोंमें 'तिलक राजनीतिक स्कूल' के नेता थे जो हिन्दू आदर्शके मुकाबले राष्ट्रीय आदर्शको तुच्छ समझते थे। इन लोगोंने हिन्दुओंमें साम्प्रदायिक भावनाका काफी जोश भरा और लोकमान्य तिलककी लोकप्रियताका खूब शोषण किया। मुसलमानोंको अंग्रेजोंकी तरफ झुका देखकर और इस झुकावसे मामूली फायदा उठाते देखकर इन तथाकथित राष्ट्रीयतावादी हिन्दू नेताओंने भी 'रेसपांसिव कोऔपरेशन' की घातक नीति अख्तियार की और इन लोगोंने समझा कि इससे वे सरकारका 'फेवर' भी पायेंगे और हिन्दू-राष्ट्रीयताका आदर्श भी पूरा कर सकेंगे। लेकिन उनकी

यह धारणा कतई गलत निकली। न वे सरकारकी दयाही पा सके और न हिन्दू-राष्ट्रीयताका आदर्श ही पूरा कर सके। हां, सिर्फ एक बातमें इन्हें सफलता जरूर मिली और वह यह कि हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यकी खाई बहुत चौड़ी हो गई।

आज मि० जिन्नाको अपना तानाशाह मानकर मुस्लिम लीगके नेता हिन्दुस्तानको हिन्दू-भारत और मुस्लिम-भारतमें बांट देनेपर तुले नजर आरहे हैं। मि० जिन्ना फरमाते हैं कि:—"आज तो हम सिर्फ एक-चौथाई भारत लेनेको तैयार हैं। हिन्दुओंसे हम कोई सौदा नहीं कर रहे हैं। किन्तु हमारी मांग अगर पूरी न की गई तो आगे चलकर हिन्दुओंको तीन-चौथाई भी नहीं मिलेगा। आज 'पाकिस्तान' ही हमारा चरमलक्ष्य है। इसे हासिल करनेके लिये अगर जरूरत पड़ी तो हम अपना खून बहा देंगे।" यह बात मि० जिन्नाने २३ नवम्बर १९४० को दिल्लीमें मुस्लिम-छात्र-सम्मेलनका उद्घाटन करते हुए कही थी। लेकिन उपर्युक्त कथनके लिये मि० जिन्नाको दोषी करार देनेके पहले हमें उन हिन्दू नेताओंकी बातोंपर भी ध्यान देना होगा जो भारतके नौ-करोड़ मुसलमानोंको निकालकर हिन्दू-राज्य कायम करनेका सुनहला स्वप्न देख रहे हैं। १७ नवम्बर १९४० को कृष्णनगर (नदिया) में बंगाल प्रान्तीय हिन्दू सभाके अधिवेशनके अवसरपर, जलांगी-नदीके तटपर हिन्दू-झण्डा फहराते हुये अ० भा० हिन्दू महासभाके स्थानापन्न अध्यक्षकी हैसियतसे डा० एस० बी० मुंजेने कहा था कि:—

"Whatever constitution was to be establishd in this country, it should be a constitution of the Hindus. Hindus would not commit any grave error if they said that Hindusthan was for the Hindus, just as Afghanisthan was for Afgans, Iraq for the Iraquis and Arabia for the Arabs."

अर्थात्:—"इस देशका जो भी विधान बनेगा वह हिन्दुओंका विधान होगा। जिस प्रकार अफगानिस्तान अफगानोंका है, ईराक ईराकियोंका है और अरब अरबोंका है उसी प्रकार हिन्दुस्तान हिन्दुओंका है। अगर हिन्दू यह दावा करते हैं तो कोई बहुत बड़ी भूल नहीं करते!" हिन्दू नेताओंकी इन सड़ियल दलीलोंको सुनकर हमें हैरतमें पड़ जाना पड़ता है। ये अब भी दसवीं शताब्दीके दिमागसे बातें करते हैं। वर्तमान युगके अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों और उसके तात्विक अर्थोंपर ये जरा भी ध्यान नहीं देते। और इस पर तुर्रा यह कि ये साम्प्रदायिक नेता एकताका नारा भी खूब बुलन्द करते हैं। डा० मुञ्जे, श्री सावरकर, भाई परमानन्द तथा अन्य हिन्दू नेता यह कहते फिरते हैं कि हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी हैसियत जर्मनीके यहूदियोंकी हैसियतसे मिलती-जुलती है। लिहाजा जर्मनीमें 'शुद्ध आर्य रक्त' का दावा करनेवाले नाजियोंने जो बर्बर बर्ताव यहूदियोंके साथ किया है वैसा ही बर्ताव हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंके साथ भी होना उचित है। हिन्दू नेताओंकी इन बातोंसे अल्पसंख्यक मुसलमान अगर भयभीत होते हैं तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। किसी भावी खतरेसे अपने अस्तित्वकी रक्षा करनेका अधिकार तो सभीको है। लेकिन इन साम्प्रदायिक नेताओंको, जो अवैज्ञानिक और विचारशून्य दावे करते फिरते हैं, याद रखना चाहिये कि हिन्दुस्तानमें न तो 'हिन्दू-राज' कायम होगा और न 'पाकिस्तान' की ही कोई संभावना है। हिन्दुस्तान अगर मौजूदा साहूकारी साम्राज्यवादके चंगुलसे छुटकारा पा सका तो इस देशमें हिन्दुस्तानियोंका विशुद्ध प्रजातंत्रात्मक शासन स्थापित होगा; जिसमें अल्पसंख्यक जातियों और बहुसंख्यक जातियोंका समानताका अधिकार रहेगा और किसी एक जातिके प्रभुत्वसे दूसरी जातिको खतरा नहीं रहेगा।

यह एक विचार करनेकी बात है कि भारतमें राष्ट्रीय आन्दोलनके आरम्भ-में, जब कि महात्मा गांधीके अहिंसा और असहयोगका सिद्धान्त, राजनीतिक शस्त्रके रूपमें यहां नहीं फैला था, अधिकांश हिन्दू नेता क्रान्तिकारी विचारोंके थे। इस सिलसिलेमें उन्हें सरकार द्वारा बड़ी-बड़ी यातनाएं भी भुगतनी पड़ी थी और हम आज भी उनके त्याग एवं बलिदानके सामने अपना मस्तक अदब और इज्जतके साथ झुका देते हैं। लेकिन कांग्रेसका आन्दोलन जब जोरोंपर शुरू हुआ तो पुराने क्रान्तिकारी नेता अव्वल दर्जेके प्रतिक्रियागामी हो गये और हमारी आजादीकी लड़ाईमें बाधाएं पहुंचाने लगे। पुराने जमानेके क्रान्तिकारी नेता, चाहे वे हिन्दू रहे हों अथवा मुसलमान, प्रायः सरकारके साथी बन बैठे। कांग्रेसकी आलोचना करना ही उनका काम हो गया और इससे उन्हें कुछ व्यक्तिगत लाभ भी हुआ। लेकिन इस जगह मुझे इन बातोंका हवाला देना अभीष्ट नहीं है। *संसारके राजनीतिक आन्दोलन ऐसे* नेताओंकी कारगुजारियोंसे भरे पड़े हैं। जो लोग यह समझते हैं और इस बातपर विश्वास करते हैं कि—राजनीतिमें एक बातपर अड़ा रहना मूर्खता है उन्हें सिद्धान्त और उद्देश्य बदलते देर नहीं लगती। मुझे तो यहां हिन्दुओंकी उपेक्षा नीति और उनकी साम्प्रदायिक कट्टरताका जिक्र करना है। मुसलमानों-को जबतक इस बातका भय बना रहेगा कि हिन्दुस्तानको स्वराज्य मिल जानेपर हिन्दू आदर्शके अनुसार बनाये गये शासन-विधानकी स्थापना होगी तबतक वे देशकी राजनीतिक आजादीकी लड़ाईमें तहेदिलसे शामिल नहीं होंगे। कांग्रेसने इस दिशामें अपनी स्थिति आइनेकी तरह साफ कर दी है। कांग्रेस-का उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करना और दोनोंकी शामिल कोशिशों-से देशको स्वाधीन करना है। मुल्कके आजाद हो जानेपर, देशके सभी वर्गों और सभी जातियोंके निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी सलाह और रायसे ऐसा विधान

बनाया जायगा जिसमें किसी जातिको कोई शिकायत करनेकी गुंजाइश यथा-संभव नहीं रहेगी। परन्तु मुसलमानोंको हिन्दू नेताओंकी गतिविधिसे भय है और यह भय अस्वाभाविक भी नहीं है। साथही मुस्लिम लीग जैसी मुस्लिम संस्थाओंके नेताओंसे हिन्दुओंको भी खतरा नजर आता है और उसे भी हम अस्वाभाविक नहीं कह सकते। हम यह नहीं कहते कि हिन्दू अपनी संस्कृति और सभ्यताको खोकर मुस्लिम संस्कृति और मुस्लिम सभ्यता स्वीकार कर लें। लेकिन हम यह जरूर कहेंगे कि बहुसंख्यक होनेके नाते हिन्दुओंको अधिक उदारतासे काम लेना होगा। अपने जातिगत स्वार्थोंपर चिपके रहकर वे मुसलमानोंको मिला नहीं सकेंगे ; और खासकर ऐसे मौकेपर जब कि एक तीसरी ताकत मजहबपरस्त मुस्लिम नेताओंको उभाड़कर अपना स्वार्थसिद्ध करनेमें लगी हुई हो। अपने मुल्ककी बेहतरीके लिये हिन्दुओंको आमतौरपर मुसलमानोंसे अपेक्षाकृत अधिक त्याग दिखाना होगा।

मुसलमानोंको लक्ष्य करके हिन्दू महासभाके नेता अक्सर यह ऐलान किया करते हैं कि—'अगर तुम आओगे तो तुम्हारे साथ मिलकर, अगर नहीं आओगे तो तुम्हारे बिना और यदि तुम विरोध करोगे तो तुम्हारा मुकाबला करके भी हिन्दू, राष्ट्रीय-स्वाधीनताका युद्ध अपनी शक्तिभर जारी रखेंगे। हिन्दुओंको उत्तेजित करनेके लिये उनके सामने हिन्दुओंकी दयनीय दशाका चित्र खींचा जाता है और कहा जाता है कि हिन्दू तो एक 'मरणासन्न जाति' (A dying race) है। आर्यसमाजके नेता और उपदेशक तो और दो कदम आगे बढ़े हुए हैं। आर्यसमाजी उपदेशक सारे संसारमें 'दयानन्दकी खेती ही लहराया' करते हैं और हारमोनियमपर गा-गाकर यह प्रचार किया करते हैं कि—"आयेंगे खत अरबसे उनमें लिखा यह होगा; गुरुकुलके ब्रह्मचारी हलचल मचा रहे हैं।" 'अखिल भारतवर्षीय राजार्य कांग्रेस'का द्वितीय अधिवेशन 'पंजाब केशरी'

लाला खुशहालचंदजीके सभापतित्वमें ६, ७, और ८ अक्तूबर १९४० को लखनऊमें हुआ था। उन्होंने अपने विषैले भाषणमें आर्यों के सामने यह कार्यक्रम उपस्थित किया था कि—"आर्य विद्वान आदर्श वैदिक-राजपद्धति संसारके सामने रखें और इसे प्रचलित करनेके लिये विस्तृत आन्दोलन एवं प्रचार किया जाय। इस समय आदर्श और शुद्ध-शासन-पद्धतिके अभावसे संसार दुखी हो रहा है। यदि संसारको वेदमार्ग न दिखाया गया तो केवल विज्ञान और नित नये आविष्कारों तथा स्वार्थ और भोगवादके आधारपर बना यह 'माडर्न संसार' अपनी ही ज्वालामें जल मरेगा। × × × × क्षात्र धर्मको जीवित करने और रखनेके लिये विशेष योजनाएं बनायी जायं। इस उद्देश्य-पूर्तिके लिये यदि किसी दल अथवा शक्ति विशेषके साथ मिलना पड़े तो भी संकोच न किया जाय ताकि आर्य-जातिमें सच्चे क्षत्रिय पैदा हो सकें और आर्य-संस्कृति एवं सभ्यताकी रक्षा हो सके। क्षात्र धर्मके बिना आर्य जाति तथा यह देश एक लाशकी भांति है जिसको गिद्ध, गीदड़ तथा कीट-पतंगे नोचते ही रहते हैं।" यह एक ऐसे आर्य-नेताके उद्‌गार हैं जो पंजाबमें अच्छा प्रभाव रखते हैं और राष्ट्रीयतावादी होनेका भी पूरा दावा करते हैं। इनसे अगर पूछा जाय कि आपके इस आदर्शके आधारपर यदि काम किया जाय तो भारतवर्षमें साम्प्रदायिक एकता कैसे प्राप्त होगी तो शायद उनके पास इसका कोई उत्तर नहीं हो सकता। जिस तरह आर्यों को अपनी आर्य-राज्य-पद्धतिसे प्रेम है उसी तरह मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों, सिखों और पारसियोंको भी तो अपनी राज्य-पद्धतियोंसे प्रेम हो सकता है। इस सिद्धान्तपर राष्ट्रीयताका पौदा लहलहानेके बजाय सूख जायगा और भारत कभी आजाद नहीं हो सकेगा। जातिगत धार्मिक सिद्धान्तोंको यदि राजनीतिक एवं आर्थिक उसूलोंपर जबरन लादा गया तो कोई देश और

खासतौरसे भारत जैसा देश, जिसमें अनेक जातियों और धर्मोंके लोग आबाद हैं, कभी खुशहाल नहीं हो सकता। यह तो गृह-कलह और धर्म-युद्धोंका मार्ग है।

मुस्लिम लीगके नेताओंकी कड़ीसे कड़ी आलोचना इसलिये की जाती है कि वे भारतवर्षको हिन्दू और मुस्लिम भारतमें विभक्त करना चाहते हैं। लेकिन हिन्दू सभावादी नेता भी अप्रत्यक्ष रूपसे यही चाहते हैं। वे हिन्दुस्तान में हिन्दू राज्यकी स्थापना करना चाहते हैं और उनकी मंशा मुसलमानोंको या तो इस देशकी सीमासे निकाल बाहर करनेकी रहती है या वे मुसलमानों को कीर्तदास—गुलाम बनाकर अपनी कृपा पर रहने देना चाहते हैं। डा० मुंजेका कहना है कि हिन्दुस्तानको अगर स्वराज्य मिलेगा तो वह ईसाइयों और मुसलमानोंका स्वराज्य नहीं होगा बल्कि वह हिन्दुओंका स्वराज्य होगा। हिन्दुस्तान का शासन हिन्दू राष्ट्रीयताके आदर्शानुसार होगा। हिन्दू नेता यह भी कहते हैं कि अगर २८ करोड़ हिन्दू स्वराज्य नहीं ले सकेंगे तो ९ करोड़ मुसलमानोंके शामिल हो जानेसे भी स्वराज्य नहीं मिलेगा। इससे स्पष्ट है कि वे स्वराज्य भी मुसलमानोंको अलग रख कर लेना चाहते हैं। हिन्दू मुसलमानोंको ठीक उसी प्रकार परदेशी मानते हैं जिस प्रकार अंग्रेजों को। स्वराज्यका शुद्ध चित्र उन्हें तभी दिखाई देता है जब कि उसमें अंग्रेजोंकी ही तरह मुसलमानोंका भी चिन्ह न रहे। वे कहते हैं कि—'The nationalism of the predominantly religious nation inhabiting that country is the nationalism of that country.' यानी—'जिस देश में जिस धर्मके लोगोंकी प्रधानता हो उस देशकी वही राष्ट्रीयता है।' उनके कहनेका तात्पर्य यह है कि हिन्दुस्तानमें हिन्दुओंकी प्रधानता है इसलिये इस देशकी राष्ट्रीयता भी हिन्दू राष्ट्रीयता है। अगर सच कहा जाय तो राष्ट्री-

यताकी ऐसी लचर परिभाषा करनेवाले राष्ट्रीयताके तात्विक अर्थको—उसके बुनियादी उसूलको या तो समझते ही नहीं या समझ-बूझकर भी राष्ट्रीयताका गला घोंटते हैं—न्याय और औचित्यकी हत्या करते हैं। राष्ट्रीयताकी उपर्युक्त परिभाषा तो मैंने सिर्फ डा० मुंजे जैसे व्यक्तिके मुंहसे ही सुनी है। उन्होंने यह भी कहा है कि सात सौ वर्ष पहले हिन्दुस्तान केवल हिन्दुओंका देश था, कोई दूसरी कौम यहां आबाद न थी। इसलिये इस देशकी राष्ट्रीयता हिन्दू राष्ट्रीयता है। मुसलमान अगर इस मुल्कमें आबाद रहना चाहें तो उन्हें हिन्दू राष्ट्रीयता को माननेके लिये मजबूर होना पड़ेगा; वरना वे इस देशमें रह नहीं सकते। ऐसी दशामें यदि मुसलमान हिन्दुस्तानमें मुस्लिम-राष्ट्र बनाना चाहें तो वह घातक एवं असम्भव होते हुए भी स्वाभाविक है। हिन्दू महासभाके अध्यक्ष श्री विनायक दामोदर सावरकर भी डा० मुंजेकी ही भाषामें राष्ट्रीयताका समर्थन करते हैं। वे कहते हैं कि हिन्दू तो हिन्दुस्तानके आदि निवासी हैं इसलिये यह हिन्दू राष्ट्र है। उनके विचारानुसार हिन्दुस्तानकी सीमामें प्रवेश करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है और हिन्दुस्तानमें रहकर हिन्दू आदर्शोंका पालन करना उसका कर्तव्य है। हिन्दुओंको चाहिये कि वे पहले हिन्दू हितोंके लिये लड़ें; उसके बाद और किसी दूसरी बातकी परवाह करें। श्री सावरकरका ख्याल है कि इस समय साम्प्रदायिक एकताका सवाल ही नहीं उठाना चाहिये। साम्प्रदायिक हितोंके लिये लड़ना बुरा नहीं है। मुसलमान जब हिन्दुओंसे बिलकुल अलग रहनेपर आमादा हैं तो उनसे समझौतेकी बातचीत तक अब नहीं करनी चाहिये। लेकिन श्री सावरकर और उनके साथियोंने मुसलमानोंको मिलानेकी चेष्टा ही कब की है। इस दिशामें चेष्टा करनेवालोंको तो वे देशका दुश्मन कहते फिरते हैं। हिन्दू नेताओंकी बातें सुन-सुन कर मुसलमान सशंकित हो गये हैं। वे हिन्दुओंकी मंशा पर भी सन्देह करते हैं। राष्ट्रीय पंचायत

(Constituent Assembly) बुलाकर भारतका भावी विधान बनानेकी बात सिद्धान्त रूपसे स्वीकार करनेके लिये बंगाल असेम्बलीमें जब एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो कोलीशन-पार्टीके एक प्रमुख मुस्लिम सदस्यने उक्त प्रस्तावका विरोध करते हुए यहां तक कह डाला था कि—The Hindus are enemies of the Muslims" अर्थात्—'हिन्दू मुसलमानोंके दुश्मन हैं।' मुसलमान हिन्दुओंपर यह इल्जाम लगाते हैं कि हिन्दू नेता हमेशा नयी-नयी समस्याएं पैदा किया करते हैं। 'पूना-पैक्ट' करके हिन्दुओंने दलित-वर्गकी एक और नयी अल्पसंख्यक जमात बना दी है। मुसलमान बहुसंख्यक जातिका जुल्म अब नहीं बर्दाश्त कर सकते। वे हिन्दुओंके टुकड़ोंपर जीकर अब यतीम-बच्चे या 'चैरिटी ब्वाइज' नहीं बने रहेंगे। देहातोंमें मुसलमानोंको हिन्दू जनता हिकारतकी नजरसे देखती है। मुसलमान अगर कोई चीज भूलसे भी छू लेते हैं तो उसे नापाक समझा जाता है। इस तरहके अनेक अभियोग हिन्दुओं पर लगाये जाते हैं। हम यह नहीं कहते कि मुसलमानोंके ये सारे अभियोग सच्चे हैं। लेकिन हिन्दू नेताओंकी बातें सुनकर और मुसलमानोंके साथ अपढ़ हिन्दुओंका बर्ताव देखकर इन अभियोगोंको कतई निराधार भी नहीं कहा जा सकता। हिन्दुओं और मुसलमानोंके पारस्परिक आक्षेपोंके औचित्य और अनौचित्यपर हम आगे चलकर विचार करेंगे। इस स्थलपर मुझे साधारण हिन्दू कांग्रेस-कर्मियोंकी मनोवैज्ञानिक अवस्था एवं उनकी विचारधारापर भी पक्षपात शून्य होकर जरा गौर करना है।

यह सच है कि कांग्रेस हिन्दू-मुसलिम एकताकी सबसे बड़ी हिमायती है। महात्मा गांधी इसके लिये प्राणोंकी बाजी लगा चुके हैं। कांग्रेसके राष्ट्रीय-कार्यक्रममें हिन्दू-मुस्लिम एकताका बहुत बड़ा स्थान है। कांग्रेसके बड़े नेता हमेशा इस एकताके लिये सचेष्ट रहते हैं। कुछ अंशोंमें हिन्दुओंके अप्रिय

होकर भी वे मुसलमानोंको मिलानेको तैयार हैं। कांग्रेसके नेता हिन्दुओंको सलाह देते हैं कि:—"Since you are in the majority, you must satisfy the minority." " यानी—'चूंकि तुम [हिन्दू] बहुमतमें हो इसलिये तुम्हें अल्पमतवालोंको संतुष्ट करना होगा।' लेकिन कांग्रेसके 'मम्होले' और साधारण श्रेणीके कार्यकर्ता, साम्प्रदायिकताकी भावनासे सर्वथा मुक्त नहीं हैं। उनका हिन्दू संस्कार अब भी उनपर प्रभुत्व बनाये हुआ है। पं० जवाहर-लाल नेहरूका'जन सम्पर्कवाला कार्यक्रम (Mass contact programme) इसी वजहसे विफल हुआ। साधारण जनतामें काम करनेवाले कांग्रेस कर्मी और कांग्रेसके 'मझोले' नेता अपना साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अभी छोड़ नहीं सके। यह बात मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवपर लिख रहा हूं। मुस्लिम मोहल्लोंमें जाकर मुसलमानोंको कांग्रेसका सदस्य बनाने और उनके कानों तक कांग्रेसका पैगाम पहुंचानेमें हिन्दू कांग्रेस कर्मियोंने कभी दिलचस्पी नहीं ली। मुसलमानोंके प्रति उनमें अब भी घृणाके भाव जागृत हैं। अछूतोंसे वे अब भी नफरत करते हैं। वे संस्कृत मिश्रित हिन्दी बोलते हैं और हिन्दुस्तानी जबानको शुद्ध हिन्दी के लिये घातक समझते हैं। 'हिन्दी बनाम हिन्दुस्तानीका' झगड़ा इसका प्रमाण है। भूषण लिखित'शिवा बावनी'को कोर्सकी किताबोंसे निकाल देनेका गांधीजी ने जब ऐलान किया तो हिन्दू कांग्रेस कर्मियों तकने गांधीजीकी कड़ीसे कड़ी आलोचना की थी और उन्हें 'हिन्दी-हिन्दू' का शत्रुतक कहा गया था। इन बातोंका लिखित प्रमाण तो मुश्किलसे मिल सकता है मगर असलियत यही है; हालांकि बहुतेरे लोग इस बातसे नाराज हो जायँगे और तर्क करके इसे असत्य ठहरानेकी निष्फल चेष्टा भी करेंगे।

हम ऊपर कह चुके हैं कि हिन्दुओंने मुसलमानोंकी हमेशा उपेक्षा की है। मुसलमानोंको इस देशका बाशिन्दा नहीं बल्कि 'विदेशी लुटेरा' समझा

गया है । हिन्दू अपनेको सदैव श्रेष्ठ और शुद्ध जातिका समझते हैं । हिन्दुओं के खूनकी बूंद-बूंदमें यह भावना भर गई है और मुसलमानोंको विदेशी, लुटेरा, म्लेच्छ तथा यवन समझना उनका संस्कार-सा हो गया है । लेकिन पाश्चात्य सभ्यताके सम्पर्कमें आने तथा कांग्रेसके आन्दोलनसे यह संस्कार धीरे-धीरे मिट रहा है और इस संकीर्ण साम्प्रदायिक संस्कारके लुप्त हो जानेमें ही देशका साधारण कल्याण सन्निहित है । मुगल सम्राटोंके जमानेमें हिन्दू-मुस्लिम एकताकी चेष्टायें की गयी थीं और उस समय बहुतसे ऐसे साधु-संत भी हुए थे जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकताको आर्थिक रूप दिया था । कबीर, दादू, नानक, मलूकदास, चैतन्य और रामदेव आदि संतोंने इस दिशामें बड़ी चेष्टा की थी । इन लोगोंने अपनी साखियोंके जरिये हिन्दू मुसलमान, दोनोंको समान धर्मोपदेश दिया और निर्भीकताके साथ दोनों मतोंकी रूढ़ियोंका खण्डन किया, प्राणिमात्रसे प्रेम और एक ईश्वरकी भक्तिका उपदेश दिया । नानक अपने एक पदमें कहते हैं—"दयाको मस्जिद बना, सचाईको मुसल्ला मान, इंसाफको कुरान समझ, इन्सानियतका रोजा रख तब तू सच्चा मुसलमान होगा ।" स्वामी नारायणके मजहबको मुगल बादशाह मुहम्मद शाहने स्वीकार किया था । बादशाहका दस्तखती परवाना अभीतक, इस सम्प्रदायके मुख्य मठ (बलिया जिला) में मौजूद है ।

बङ्गाल और महाराष्ट्रमें भी इस धार्मिक क्रान्तिका प्रभाव पाया जाता है । बङ्गालमें चैतन्य प्रभुका जन्म पन्द्रहवीं शताब्दीके अन्तमें हुआ था । उस समयकी बङ्गालकी सामाजिक दशाका वर्णन दिनेशचन्द्रसेनने इस प्रकार किया है:—"ब्राह्मणोंका प्रभुत्व अति कष्टकर हो गया था । कुलीनताके दृढ़ होनेके साथही जाति-भेद अधिकाधिक बढ़ता गया । ब्राह्मण लोग कहनेके लिये अपने धर्मोंमें उच्चादर्शोंका प्रतिपालन करते थे; किन्तु जाति बन्धनके कारण

मनुष्यमें भेद बढ़ता जा रहा था। नीची जातिके लोग ऊंची जातिके लोगोंके स्वेच्छाचारसे दबकर आहें भर रहे थे। इन ऊंची जातिके लोगोंने नीची जातिवालोंके लिये विद्याका द्वार बन्द कर रखा था। उन्हें उच्च जीवनमें प्रवेश करनेकी मनाही थी और नये पौराणिक धर्मपर ब्राह्मणोंका ठेका हो गया था—मानों वह कोई बाजारू चीज हो।" चैतन्यने इसपर गम्भीर विचार किया। उन्होंने सूफी मुसलमान साधुओंसे एकेश्वरवादका तत्व समझा और हिन्दू-मुसलमान तथा नीच-ऊंचको समान रूपसे दीक्षित किया—प्रेमधर्म, मजहबे-इश्कका प्रचार किया।

महाराष्ट्रकी तत्कालीन सामाजिक अवस्थापर प्रसिद्ध विद्वान महादेव गोविन्द रानाडेने इस भांति प्रकाश डाला है:—"इस्लामका कठोर एकेश्वरवाद कबीर, नानक आदि साधुओंके दिलमें घर कर गया। हिन्दू त्रिमूर्ति दत्तात्रेयके उपासक उनकी मूर्तिको मुसलमान फकीरके-से कपड़े पहनाते थे। यही प्रभाव महाराष्ट्रकी जनताके दिलोंपर और भी अधिक जोरसे काम कर रहा था। ब्राह्मण और अब्राह्मण, दोनोंके प्रचारक लोगोंको उपदेश दे रहे थे कि—राम और रहीमको एक समझो। कर्म-काण्ड एवं जाति-भेदके बन्धनोंको तोड़ दो। ईश्वरमें विश्वास रखो और मनुष्य मात्रसे प्रेम करो, सबसे मिलकर रहो और अपना धर्म एक बनाओ।" इस प्रकारका उपदेश देनेवाले महाराष्ट्रके पहले साधु राम देव थे। सन्त तुकारामने भी लोगोंको ऐसा ही उपदेश दिया और एकता एवं प्रेमका प्रचार किया। शेख मुहम्मदके अनुयायी मन्दिर और मस्जिद, दोनोंमें जाते थे, रोजा और एकादशी व्रत रखते थे। इन सन्तोंके नवीन विचारोंसे उदारता एवं दयालुता फैली। इस्लामके साथ हिन्दू मतका मेल हुआ और सब भांतिसे राष्ट्रीय क्षमताकी वृद्धि हुई। लेकिन इन साधु-संतोंको सार्वभौमिक एकता स्थापित करनेमें सफलता नहीं मिली। इनके

नामपर कुछ स्वार्थियोंने मजहबी जमात बना ली और धार्मिक गद्दियों तथा मठोंकी स्थापना करके अलग-अलग पथ चला दिया। आज कबीरपंथी, दादू-पन्थी और नानक पन्थी आदि अनेक पंथ भारतमें मौजूद हैं। थोड़ेसे फायदेके लिये, चन्द व्यक्तियों और छोटी जमातोंके क्षुद्र स्वार्थोंके लिये इस अभागे देशके लोगोंने मजहबको महदूद बना लिया। मुसल्मानोंसे हिन्दू जितनी ही घृणा करते गये उतना ही मुसल्मान हिन्दुओंसे भयभीत होते गये। पारस्परिक विश्वास जाता रहा। हिन्दू अपनेको श्रेष्ठ समझनेकी भावना (Superiority Complex) से बर्बाद हुये और मुसल्मान अपनेको हीन समझनेकी प्रवृत्ति (Inferiority Complex) के शिकार होकर हिन्दुओंसे डर खाने लगे। दोनों जातियोंकी ये दो भाव धाराएं देशके लिये सबसे अधिक हानिकारक सिद्ध हुई हैं।

१०

कांग्रेस-विरोधी ताकतें

भारतीय राष्ट्रीय महासभा या 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' आज हिन्दुस्तान की आजादीके लिये ब्रिटिश साम्राज्यवादसे लड़ रही है। आजादीके इस जंगमें, स्वाधीनताके संग्राममें भारतवर्षका मध्यमवर्ग और साधारण जनसमूह कांग्रेसके साथ है। कांग्रेसका दरवाजा मुल्ककी सभी कौमोंके लिये समानरूपसे खुला हुआ है। कांग्रेस किसी जाति विशेष या वर्ग विशेषके लिये नहीं लड़ रही है। जो काम कांग्रेसके सामने है वह सचमुच बहुत बड़ा काम है। कांग्रेसके नेतृत्वमें हम स्वराज्य लेनेको निकले हैं। कांग्रेस श्रेणी-युद्ध नहीं चाहती। स्वराज्यकी लड़ाईमें वह देशकी सभी श्रेणियोंका, सभी वर्गोंका सहयोग चाहती है। इस सहयोगके लिये कांग्रेस देशके सामने हाथ फैलाये हुए है। लेकिन कांग्रेसको वह सहयोग नहीं मिल रहा है जो मिलना लाजिमी है। कांग्रेसके उद्देश्य और लक्ष्यमें बाधा डालनेके लिये देशके अन्दर अनेक ताकतें पैदा हो गयी हैं। कांग्रेस साम्राज्यवाद-विरोधी-मोर्चा तैयार करनेमें लगी हुई है।

किन्तु इस अभागे देशमें कांग्रेस-विरोधी-मोर्चा भी तैयार हो रहा है। इन कांग्रेस-विरोधी ताकतोंके खोखलेपन पर विचार करनेके पहले हमें यह जान लेना चाहिये कि कांग्रेस स्वराज्य क्यों चाहती है और देशको स्वाधीन करनेकी चेष्टा करनेवाली कांग्रेसके विरोधियोंकी मंशा क्या है? कांग्रेसने साफ शब्दोंमें अपने उद्देश्यका ऐलान किया है। स्वराज्य हमारे लिये अपनी खोई हुई रूहको फिरसे पाना है, न कि सिर्फ अपनी खोई हुई दौलतको वापस लाना। कांग्रेस स्वराज्य इसलिये चाहती है कि भारतके लोग अपने ही तरीके पर अपनी जिन्दगी बसर कर सकें। हम इस काबिल होना चाहते हैं कि दुनियाका इल्म व हुनर बढ़ाने और उसका काम चलानेमें हम भी अपना हिस्सा पूरा करें; हम 'हिन्दुस्तान' और 'हिन्दुस्तानी' को इज्जत और अजमतका लफ्ज बनायें, जिसे हम खो चुके हैं और दुनियामें आत्मसम्मानी लोगोंकी तरह विचरते हुए यह महसूस करें कि हम भी ऐसी कौमके हैं जो दरअसल बाइज्जत और आजाद हैं। अगर हम आजाद होना चाहते हैं तो हम उन सब ताकतोंके असली रूपको भूल नहीं सकते जो हमारे—कांग्रेसके खिलाफ खड़ी हैं। मुल्ककी गवर्नमेंट एक बहुत जबर्दस्त और जुटे हुए संगठनकी शक्ति रखती है। इसके एक हिस्सेका दूसरे हिस्सेकी तरफ जो मदद और हमदर्दीका भाव है उसकी बराबरी करना मुश्किल है। इसका मुकाबला करनेके लिये हमें भी इसी प्रकार संगठित होना पड़ेगा और हमारे एक-एक जुज़को भी उसी तरीकेका होना पड़ेगा जैसा कि हमारे मुखालिफोंका एक-एक जुज़ है। जब तक हम ऐसा नहीं कर सकेंगे हमारी बड़ीसे बड़ी कोशिशें बेकार होंगी और हरएक तहरीकके बाद हम अपनेको वहीं पायेंगे जहांसे हम चले थे। हिन्दुस्तानकी तवारीख शुरू जमानेसे यह दुःख भरी कहानी कहती चली आ रही है। हम अपनी मसली हुई हसरतोंका मुर्झाया हुआ हार लेकर आगे बढ़ते हैं, आज़ादीकी देवी-

को भेंट करनेके लिये। लेकिन हमारे पैर हमारे ही भाइयोंके द्वारा खींच लिये जाते हैं, हम गिर पड़ते हैं और आजादीकी देवी करीब आकर भी हमसे बहुत दूर हो जाती है। हर मामलेमें हमें शुरूसे ही काम शुरू करना पड़ता है। इसलिये इन्सानी फितरतकी कमजोरियोंको नजरमें रखते हुए हमें नियन्त्रित जीवनके कुछ सीधे-सादे कायदोंकी फेहरिस्त तैयार करनी होगी और उसीके मुताबिक चलनेके लिये सबको मजबूर करना होगा।

इस अध्यायमें हमें कांग्रेस-विरोधी ताकतोंकी कारगुजारियों पर गौर करना है। सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि वे कौन-कौन सी ताकतें हैं जो कांग्रेसके अस्तित्वसे घबड़ाती हैं, उसकी हस्तीसे नफरत करती हैं और उसकी जड़ खोदने पर तुली हुई हैं। कांग्रेस जब देशसे विदेशी हुकूमतको हटाकर प्रजातन्त्रमूलक स्वतन्त्र सरकार कायम करना चाहती है तो यह साफ जाहिर है कि कांग्रेसका विरोध वे ही लोग करेंगे जो विदेशी हुकूमतको बरकरार देखना चाहते हैं और उसके सायेमें रहकर निजी फायदा उठाना चाहते हैं; लेकिन लोगोंकी समझ पर धोखेका काला पर्दा डालकर झूठे आदर्शोंकी बातें बनाते हैं। इनमें ऐसे लोगोंकी संख्या ज्यादा होती है जो त्याग और कुर्बानीसे घबड़ाते हैं और जिनका पेट अक्लकी ज्यादतीसे फटा करता है। कांग्रेसको आज ब्रिटिश सरकार जैसी दुनियाकी एक ताकतवर सल्तनतका सामना करना पड़ रहा है और साथ ही साम्प्रदायिक संगठनों तथा प्रतिक्रियागामी गुटोंसे भी, जो उसके मुकाबलेमें खड़े हैं उसकी राहके रोड़े होकर। पुराने दकियानूसी जमानेकी स्वेच्छाचारिताके प्रतीक स्वरूप देशी रियासतोंकी मजबूत किलेबन्दी भी उसे तोड़नी पड़ रही है। कांग्रेसको एक कशमकशसे होकर अपना कंटीला रास्ता तय करना है। अनेक विघ्न-बाधाएँ उसके मार्गमें हैं। उसे इन सारी दुरूह मंजिलोंको पार कर अपने मकसद पर पहुंचना है। वह अपने चरम-

किन्तु इस अभागे देशमें कांग्रेस-विरोधी-मोर्चा भी तैयार हो रहा है। इन कांग्रेस-विरोधी ताकतोंके खोखलेपन पर विचार करनेके पहले हमें यह जान लेना चाहिये कि कांग्रेस स्वराज्य क्यों चाहती है और देशको स्वाधीन करनेकी चेष्टा करनेवाली कांग्रेसके विरोधियोंकी मंशा क्या है? कांग्रेसने साफ शब्दोंमें अपने उद्देश्यका ऐलान किया है। स्वराज्य हमारे लिये अपनी खोई हुई रूहको फिरसे पाना है, न कि सिर्फ अपनी खोई हुई दौलतको वापस लाना। कांग्रेस स्वराज्य इसलिये चाहती है कि भारतके लोग अपने ही तरीके पर अपनी जिन्दगी बसर कर सकें। हम इस काबिल होना चाहते हैं कि दुनियाका इल्म व हुनर बढ़ाने और उसका काम चलानेमें हम भी अपना हिस्सा पूरा करें; हम 'हिन्दुस्तान' और 'हिन्दुस्तानी' को इज्जत और अजमतका लफ्ज बनायें, जिसे हम खो चुके हैं और दुनियामें आत्मसम्मानी लोगोंकी तरह विचरते हुए यह महसूस करें कि हम भी ऐसी कौमके हैं जो दरअसल बाइज्जत और आजाद हैं। अगर हम आजाद होना चाहते हैं तो हम उन सब ताकतोंके असली रूपको भूल नहीं सकते जो हमारे—कांग्रेसके खिलाफ खड़ी हैं। मुल्ककी गवर्नमेंट एक बहुत जबर्दस्त और जुटे हुए संगठनकी शक्ति रखती है। इसके एक हिस्सेका दूसरे हिस्सेकी तरफ जो मदद और हमदर्दीका भाव है उसकी बराबरी करना मुश्किल है। इसका मुकाबला करनेके लिये हमें भी इसी प्रकार संगठित होना पड़ेगा और हमारे एक-एक जुज़को भी उसी तरीकेका होना पड़ेगा जैसा कि हमारे मुखालिफोंका एक-एक जुज़ है। जब तक हम ऐसा नहीं कर सकेंगे हमारी बड़ीसे बड़ी कोशिशें बेकार होंगी और हरएक तहरीकके बाद हम अपनेको वहीं पायेंगे जहांसे हम चले थे। हिन्दुस्तानकी तवारीख शुरू जमानेसे यह दुःख भरी कहानी कहती चली आ रही है। हम अपनी मसली हुई हसरतोंका मुर्झाया हुआ हार लेकर आगे बढ़ते हैं, आज़ादीकी देवी-

को भेंट करनेके लिये । लेकिन हमारे पैर हमारे ही भाइयोंके द्वारा खींच लिये जाते हैं, हम गिर पड़ते हैं और आजादीकी देवी करीब आकर भी हमसे बहुत दूर हो जाती है । हर मामलेमें हमें शुरूसे ही काम शुरू करना पड़ता है । इसलिये इन्सानी फितरतकी कमजोरियोंको नजरमें रखते हुए हमें नियन्त्रित जीवनके कुछ सीधे-सादे कायदोंकी फेहरिस्त तैयार करनी होगी और उसीके मुताबिक चलनेके लिये सबको मजबूर करना होगा ।

इस अध्यायमें हमें कांग्रेस-विरोधी ताकतोंकी कारगुजारियों पर गौर करना है । सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि वे कौन-कौन सी ताकतें हैं जो कांग्रेसके अस्तित्वसे घबड़ाती हैं, उसकी हस्तीसे नफरत करती हैं और उसकी जड़ खोदने पर तुली हुई हैं । कांग्रेस जब देशसे विदेशी हुकूमतको हटाकर प्रजातन्त्रमूलक स्वतन्त्र सरकार कायम करना चाहती है तो यह साफ जाहिर है कि कांग्रेसका विरोध वे ही लोग करेंगे जो विदेशी हुकूमतको बरकरार देखना चाहते हैं और उसके सायेमें रहकर निजी फायदा उठाना चाहते हैं; लेकिन लोगोंकी समझ पर धोखेका काला पर्दा डालकर झूठे आदर्शकी बातें बनाते हैं । इनमें ऐसे लोगोंकी संख्या ज्यादा होती है जो त्याग और कुर्बानीसे घबड़ाते हैं और जिनका पेट अक्लकी ज्यादतीसे फटा करता है । कांग्रेसको आज ब्रिटिश सरकार जैसी दुनियाकी एक ताकतवर सल्तनतका सामना करना पड़ रहा है और साथ ही साम्प्रदायिक संगठनों तथा प्रतिक्रियागामी गुटोंसे भी, जो उसके मुकाबलेमें खड़े हैं उसकी राहके रोड़े होकर । पुराने दकियानूसी जमानेकी स्वेच्छाचारिताके प्रतीक स्वरूप देशी रियासतोंकी मजबूत किलेबन्दी भी उसे तोड़नी पड़ रही है । कांग्रेसको एक कशमकशसे होकर अपना कंटीला रास्ता तय करना है । अनेक विघ्न-बाधाएँ उसके मार्गमें हैं । उसे इन सारी दुरूह मंजिलोंको पार कर अपने मकसद पर पहुंचना है । वह अपने चरम-

लक्ष्य पर पहुचनेको कृतसंकल्प है। सत्य उसका साधन और प्रेम उसकी प्रणाली है। वह इस पावन अनुष्ठान पर अविचलित होकर चलती जा रही है। उसे इसकी चिन्ता नहीं कि उसके विरोधियोंकी संख्या और शक्ति कितनी है।

कांग्रेस विरोधी ताकतोंमें मैं सरकारका जिक्र नहीं करूंगा, क्योंकि सरकारसे तो कांग्रेसकी सीधी लड़ाई है ही। कांग्रेस-विरोधी-ताकतोंमें सबसे पहले मैं साम्प्रदायिक संगठनोंको लूंगा, जो कि इस पुस्तकका प्रधान विषय है। साम्प्रदायिक जमातोंमें खास कर मुस्लिम लीग, हिन्दू सभा और सिखोंकी जमात है। हम यह शुरूमें ही साफ कर देना चाहते हैं कि इन मज़हबी जमातोंके विरोधोंके बावजूद भी हिन्दू, मुसलमान और सिख काफी बड़ी तादादमें कांग्रेसके साथ हैं। लेकिन हमारा विषय यह है कि हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखोंको कांग्रेससे अलग रखनेके लिये, जो पहलेसे कांग्रेसमें हैं उन्हें बरगला कर जुदा करनेके लिये कैसी-कैसी अजीबोगरीब चालें चली जा रही हैं। हमें अब यह समझने और तर्ककी कसौटी पर कसनेकी जरूरत है कि मुसलमानोंको कांग्रेससे क्या शिकायत है और मुस्लिम लीगके सर्वेसर्वा मि० जिन्ना कांग्रेसको आखिर क्यों कोसा करते हैं? वे कहते हैं कि कांग्रेस का उद्देश्य भारतमें हिन्दू राज्य स्थापित करना है और हिन्दुस्तानमें रहनेवाले प्रत्येक मुसलमान कांग्रेसके इस उद्देश्यको समझता है। उनके जीवनमें बड़े-बड़े कायापलट हुए हैं। सर्वप्रथम उन्होंने जब राजनीतिक जीवनमें प्रवेश किया तो वे कांग्रेसी बनकर देशकी नजरोंके सामने आये। इसके बाद उन्होंने देखा कि कांग्रेसकी नेतागिरी सस्ती नहीं है। कांग्रेसमें रह कर जिस त्याग और बलिदानकी जरूरत थी उसमें उन्होंने अपनेको कमजोर पाया। वे साम्प्रदायिक बन गये। मुस्लिम लीगी बनकर १४ शर्तें तैयार कीं और अपनी शर्तों के

लिये वे काफी मशहूर हुए। अब उन्होंने उन १४ सर्तोंको भी त्याग दिया है और 'पाकिस्तान' की प्रतिक्रियागामी योजना पेश की है। हिन्दुस्तानको 'हिन्दू-भारत' और 'मुस्लिम-भारत' में बांट देनेके लिये वे बेहद परेशान हैं। आज कल वे अपनी सारी ताकत भारतको अंग-भंग करने, अविभाज्य भारत को विभाजित करनेमें लगा रहे हैं। मि० जिन्ना फरमाते हैं कि कांग्रेस देश की दूसरी अल्पसंख्यक जातियोंको दबाने और उनका दोहन करनेके लिये अधिकार चाहती है। वह ब्रिटिश संगीनके बल पर शक्ति-सम्पन्न होना चाहती है। आज वह ब्रिटिश सरकारपर शासनाधिकार समर्पित कर देनेका दबाव डाल रही है। कल, शासन प्राप्त करते ही वह दूसरी जातियों पर भी दबाव डालेगी। यह कांग्रेसका बड़ा गन्दा काम है, यह उसका कुकर्म है। गत २५ वर्षोंसे हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करनेकी चेष्टाएं बराबर हो रही हैं। लेकिन अभी तक यह एकता नहीं हुई। हिन्दू-मुस्लिम एकता कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमका एक प्रधान अंग है। फिर भी, कांग्रेसके नेता, अपने कार्यक्रमके इस महत्वपूर्ण अंगको पूरा करना नहीं चाहते। वे इस विषयमें सच्चे नहीं हैं। इसका कारण स्पष्ट है। कांग्रेस और हिन्दू एक ऐसा समझौता चाहते हैं जिससे वे समूचे देश पर मनमाना शासन कर सकें। मुसलमानोंको कांग्रेसके शासनका बड़ा कटु अनुभव हुआ है। कांग्रेससे अब समझौतेकी कोई आशा नहीं है। भारतके मुसलमान कांग्रेसको, उसके कुकृत्योंके लिये क्षमा नहीं कर सकते। जो मुसलमान कांग्रेसमें शामिल होकर मादरे-हिन्दको आजाद करनेके लिये कुर्बानियां कर रहे हैं उन्हें मि० जिन्ना 'गद्दार' और मुसलमानोंका, इस्लामका दुश्मन कहते हैं। मौ० अबुल कलाम आजाद जैसे प्रभावशाली और हरदिल अजीज पर भी कीचड़ उछालनेसे वे बाज नहीं आये। यह मि० जिन्नाकी कितनी बड़ी हिमाकत है कि मौलाना

आजाद जैसे इस्लामके एक विश्व-विख्यात विद्वान और फिलासफरको इस्लाम का दुश्मन कहते हैं और खुद, जो कुर्आनकी शायद एक आयत भी नहीं समझ सकते, इस्लामके रक्षक बननेका दम भरते हैं।

मि० जिन्ना आज घोर साम्प्रदायिकके रूपमें हमारे सामने प्रकट हो रहे हैं। परन्तु यदि गोलमेज-कान्फ्रेन्समें दिये गये उनकी पुरानी तकरीरोंको देखा जाय तो मालूम होगा कि उस समय वे भारतकी स्वतन्त्रता और औपनिवेशिक स्वराज्यके समर्थक थे। गोलमेज सम्मेलनके एक अधिवेशनमें भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—"× × × मैं आपको भारतकी स्थिति समझा देना चाहता हूं। मैं स्पष्ट शब्दोंमें यह कह देना चाहता हूं कि भारतमें हिन्दू या मुसलमान, पारसी या ईसाई, सिक्ख या दलित वर्ग जैसा कोई वर्ग नहीं है, जो भारतके लिये आत्म-निर्णयके अधिकारको स्वीकार न करता हो।" लेकिन अब मि० जिन्नाकी आवाज बदल गयी है। स्वार्थ मनुष्यको अन्धा बना देता है, व्यक्तिगत महात्वाकांक्षा इन्सानकी आंखोंपर पर्दा डाल देती है। आज मि० जिन्नाका एक मात्र उद्देश्य सरकार और कांग्रेस, दोनोंको डरा देना और दोनोंके साथ दुराचार करना प्रकट होता है ताकि दोनों उनकी खुशामद करती रहें। यह उनकी ही चन्द बातोंसे स्पष्ट है। केन्द्रीय असेम्बलीके नवम्बर १९४० के अधिवेशनमें उन्होंने कहा था कि—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने भारतमें राष्ट्रीय सरकारके भावी प्रधान मंत्रीके नामका खुलासा नहीं किया और मेरे सामने सीधा प्रस्ताव न रखकर भारत सचिवके सामने प्रस्ताव पेश किया था। ब्रिटिश सरकारसे उन्होंने कहा कि भारतके मुसलमान ब्रिटिश सरकारसे पूरा सहयोग करनेको तैयार हैं बशर्ते कि वह मुसलमानोंको असली और पुर असर अधिकार प्रदान करे। लेकिन कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार, दोनोंको यह मालूम हो गया है कि मि० जिन्ना दोनोंमेंसे किसी एकके साथभी

समझौता करनेको राजी नहीं हैं। वे दोनोंके साथ सौदेकी बातें करते रहना चाहते हैं। वे अपनेको राजनीतिक सौदे (Political bargaining) का आचार्य समझते हैं और यही करते रहना उन्हें पसन्द है। इस बात पर कायम रहनेसे; बिना मेहनतके उनकी सियासी जिन्दगी और मुसलमानोंकी खुशामदगी भी बनी रहेगी और उन्हें खुश करनेकी कोशिशें भी जारी रहेंगी। मि० जिन्ना चाहते हैं कि केन्द्रमें सारा अधिकार अल्पसंख्यक मुसलमानोंको मिल जाय और बहुसंख्यक वर्गको उसके स्वाभाविक अधिकारोंसे वंचित कर दिया जाय। अगर उनकी मंशा सौदा करते रहनेकी न होती तो वे ऐसी मांगें पेश ही क्यों करते जो किसी भी दृष्टिसे गैरवाजिब और गैर मुमकिन हैं। मि० जिन्नाकी ऊटपटांग बातोंमें अब लोग नहीं आ सकते। वे दिन हवा हो गये जब खलील मियां फाख्ते उड़ाया करते थे। भारतमें भी अब जागरण और चेतना पैदा हो गयी है।

× × ×

मुस्लिम लीगके बाद हिन्दू सभाका नम्बर आता है। हिन्दू सभावादी भी कांग्रेससे उतनाही नाराज रहते हैं जितना मुस्लिम लीगी। मुस्लिम नेता कहते हैं कि कांग्रेस तो देशमें हिन्दू राज्य कायम करनेपर तुली हुई है। हिन्दू-सभाके नेता फरमाते हैं कि कांग्रेस हिन्दू-हितोंपर कुठाराघात कर रही है और देश मुसलमानोंको सौंप देनेपर आमादा है। दरअसल यह बड़ी अजीब सी हालत है। क्रेमलिनसे रोशनी हासिल करनेवाले एक अति-उग्रवादी कम्यूनिस्टके शब्दोंमें अगर मैं कहूं तो कह सकता हूं कि—इन दोनों साम्प्रदायिक संस्थाओंके नेताओंके विचार साफ नहीं हैं, इनकी Ideology clear नहीं है। हिन्दू नेताओंकी चंद बेसिरपैरकी दलीलोंका भी नमूना देखिये। भाई परमानन्दने व्यंग करते हुए लिखा है—"कांग्रेसने फैसला किया—

अहिंसाको धर्मके तौरपर ग्रहण करो ; इससे स्वराज्य मिलेगा। हिन्दुओंपर हमलेपर हमले हुए। उनके नेता कत्ल किये गये। लेकिन अगर किसीने हिन्दुओंको बचानेकी कोशिश की तो वह कम्यूनलिस्ट ठहराया गया और इसलिये घृणास्पद। कांग्रेसने कहा—हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यसे स्वराज्य प्राप्त होगा। इसीलिये कांग्रेसने साम्प्रदायिक मुआहिदे या पैक्ट किये, हिन्दू-अधिकारोंकी बलि दी, एकता सम्मेलन या यूनिटी कानफ्रेंसें कीं, कोरे चेक पेश किये, मिलापके लिये मुस्लिम लीगको प्रार्थना-पत्र दिये; लेकिन यह ऐक्य कोसों दूर चला गया। ज्यों-ज्यों दवाकी, मरज बढ़ता गया। फिर भी कांग्रेस कभी गलती नहीं कर सकती!" भाई परमानन्द अपनी आंखपर ऐसा रङ्गीन चश्मा लगाते हैं कि उससे उन्हें कांग्रेसका हर काम गलत नजर आता है। भाई परमानन्द उग्र क्रान्तिकारीसे कट्टर साम्प्रदायिक हुए हैं और फिर अव्वल दर्जेके प्रतिक्रियागामी! ऐसी सूरतमें वे जो कुछ भी कहें, वह उपेक्षणीय हैं क्योंकि उनकी बातोंका जवाब ठोस कामसे दिया जा सकता है, जबानसे नहीं। असलियतपर नजर डालने और वाजिब बातपर कान देनेसे तो वे साफ इन्कार करते हैं।

डा० मुंजे कहते हैं कि भारतकी राजनीतिक स्थिति बड़ी उलझनपूर्ण है। वे इस उलझनका प्रधान कारण महात्मा गांधीका आध्यात्मिक नेतृत्व और अहिंसा नीति बताते हैं। वे कहते हैं कि गांधीजी राजनीतिज्ञ नहीं हैं। वे आध्यात्मिक नेता हैं। उनके उपदेशसे, अहिंसा नीति और चर्खा शास्त्रसे इस देशकी समस्याएं नहीं सुलझ सकतीं। हिन्दुओंके साथ गांधीजी भी अन्याय करते हैं और कांग्रेस तो हिन्दू-हितोंको कुछ समझती ही नहीं। कांग्रेस सिर्फ मुसलमानोंको खुश करनेमें लगी हुई है जो असम्भव है। हम हिन्दुस्तानमें हिन्दू राष्ट्रीयता, हिन्दू-विधान

और हिन्दू राज्य चाहते हैं। मुसलमान सीधेसे रहना चाहें तो रहें वरना जहां चाहें चले जायं। कांग्रेसको हिन्दुओंकी ओरसे बोलनेका कोई हक नहीं है। हिन्दू मतदाताओंसे वोट लेकर चुनावमें विजयी होकर हिन्दुओंके हितोंको ही उसने कुचला है। इसी किस्मके और भी न जाने कितने आक्षेप कांग्रेसके सिर मढ़े जाते हैं। उनके आक्षेपोंकी सूची काफी लम्बी है। वे कांग्रेसकी आलोचना तो करते हैं मगर बदलेमें कोई दूसरा प्रोग्राम नहीं बताते। गांधी-जीके आध्यात्मिक नेतृत्वकी निन्दा उन्हें तभी फबती जब वे चाणक्य जैसा कूटनीतिज्ञ बनकर राजनीतिके अखाड़ेमें उतरते। चुनावमें कांग्रेसके मुका-बले खड़े होकर लड़नेका उन्हें पूरा हक था। उनकी महासभाने चुनाव लड़ा भी लेकिन उसके नतीजेसे उसने सबक नहीं लिया। महासभाके उम्मेदवारों-को जिस तरह पराजित होना पड़ा वही इस बातका ज्वलंत प्रमाण है कि उसकी रीति-नीतिसे हिन्दू मतदाता कहांतक सहमत हैं। हम तो यह कहेंगे कि हिन्दू महासभाके बजाय मुस्लिम-लीग मुसलमानोंका कहीं ज्यादा नेतृत्व करती है, हालांकि यह सच है कि मुस्लिम लीगने किसी राजनीतिक उसूलपर नहीं बल्कि मजहबी उसूलपर चुनाव लड़ा था और 'इस्लामपर खतरा' उपस्थित होनेका झूठा नारा लगाया था। अगर मुस्लिम लीग भी राजनीतिक कार्यक्रम पर चुनाव लड़ती तो उसकी भी वही गति होती जो गति हिन्दू-महासभाकी हुई है।

भारतके आठ प्रान्तोंमें कांग्रेसने जब अपनी मिनिस्टरी कायम की तो उस समय भी श्री वी० डी० सावरकर कहा करते थे कि—कांग्रेसके हिन्दू मिनिस्टर अपने मतदाताओंके साथ विश्वासघात करते हैं। बंगाल और पंजाब में तो मुसलमान मिनिस्टर, हिन्दुओंके हितोंको कुचलकर, मुसलमानोंको लाभ पहुंचा रहे हैं और कांग्रेसके हिन्दू मिनिस्टर उनके ही स्वार्थोंका संहार

करनेपर तुले हैं जिनके वोटसे उन्हें मिनिस्टरी नसीब हुई है । कांग्रेस सचाई-को महसूस नहीं करती ; वह अब भी मुसलमानोंसे समझौता करनेकी कुचेष्टा करती जा रही है । कांग्रेसका यह काम अन्धेकी आंखपर खुर्दबीन रखनेके समान है । अगर कांग्रेसको एकता कायम करनेमें सफलता मिल भी गयी तो वह 'बाघ और गाय' की एकता होगी । इसी किस्मके और भी न जाने कितने अभियोग उन्होंने कांग्रेसपर लगाये हैं । कांग्रेसकी अहिंसा-नीतिके भी वे कटु आलोचक हैं । यदि कोई निष्पक्ष आलोचक उनकी इन लचर दलीलोंपर गंभीरताके साथ विचार करने बैठे तो उनकी एक भी दलील ठहर नहीं सकती । अगर हिन्दू हितोंको बलि देकर कांग्रेस मुसलमानोंसे समझौता करना चाहती तो वह कर सकती थी । मि० जिन्ना और चाहते ही क्या हैं ! यदि उनकी शर्तोंको कांग्रेस मान ले तो वे बिना किसी चूं-चपड़के कांग्रेससे मिलनेको तैयार बैठे हैं । परन्तु कांग्रेस बेइन्साफी करना नहीं चाहती । हिन्दुस्तानमें हिन्दू या मुस्लिम राज्य कायम करना उसका उद्देश्य नहीं है । वह तो ऐसी सरकार कायम करना चाहती है जो भारतकी प्रत्येक जाति, प्रत्येक धर्म और प्रत्येक वर्गका पूर्ण प्रतिनिधित्व करनेवाली हो ।

× × ×

कुछ सिख और कुछ दलितवर्गके लोग भी कांग्रेसके विरोधी हैं। कांग्रेसके विरोधी सिखोंका प्रतिनिधित्व करनेका दम मास्टर तारासिंह करते हैं और दलितवर्गकी ओरसे डा० अम्बेडकर कांग्रेस विरोधी आवाजें उठाते हैं । किन्तु यह प्रसन्नताकी बात है कि सारे सिख सम्प्रदाय और समस्त दलितवर्गपर मास्टर तारासिंह तथा डा० अम्बेडकरके गलत नेतृत्वका प्रभाव नहीं है । अधिकांश सिख, सिखोंका अकाली दल और दलितवर्गके अधिकांश लोग कांग्रेसके साथ हैं । फिर भी, ब्रिटिश सरकारको बहाना करने और दुनियाको

यह दिखानेके लिये कि भारतमें एकता नहीं है, सब जातियोंपर कांग्रेसका प्रभाव नहीं है, इतना काफी है।

मद्रासकी जस्टिस पार्टी, महाराष्ट्रकी डिमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी, अखिल भारतीय नेशनल लिबरल फेडरेशन और इसी तरहके अन्य कई छोटे-छोटे दल भी कांग्रेसका समय असमय विरोध किया करते हैं। सच कहा जाय तो इनका काम ही कांग्रेसका विरोध करना है और इनकी सारी गतिविधि महज प्रस्ताव पास करने और सालाना जलसा करने तक ही सीमित है। कभी-कभी लम्बे-चौड़े मजमूनोंके बयान भी अखबारोंमें निकल जाते हैं। भारतके शोषित, पीड़ित और दलित जनसमूहसे इनका कोई सम्पर्क नहीं है। इनकी दौड़ वहीं तक हैं जहां तक टेलीफोन और तारके तार फैले हुए हैं, जहां तक मोटरें आसानीसे, बिना 'जर्किंग' के जा सकती हैं। लेकिन सरकार तो इन्हींको महत्व भी देती है। कांग्रेसके राष्ट्रीय आन्दोलनको, जिसमें समूचे राष्ट्रके हृदयका स्पन्दन सन्निहित है, मि० एमरी 'बनावटी शोरगुल' (Artificial agitation) कहते हैं। भारतमें कांग्रेसके खिलाफ जो दलबन्दी दिखायी देती है इसका फायदा ब्रिटिश सरकार उठाती है।

× × ×

अब मैं एक और कांग्रेस विरोधी ताकतका जिक्र करूंगा। शायद यह एक बहुत बड़ी ताकत है। मेरा उद्देश्य भारतकी देशी रियासतोंसे है। ब्रिटिश हुकूमतने भारतवर्षको ब्रिटिश भारत और भारतीय भारतमें तकसीम कर दिया है। लेकिन कांग्रेस भारतको अविभाज्य मानती है। हिन्दुस्तानमें छोटी-बड़ी करीब ५६२ रियासतें हैं। १९३५ ई० के नये शासन विधानके अनुसार भारतके लिये ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने संघ-योजनाकी तजबीज पेश की है। इसके अनुसार जागृत ब्रिटिश भारत और प्रतिक्रियागामी देशी

रियासतोंको मिलाकर संघी असेम्बली बनायी जायगी लेकिन देशी रियासतोंके मामलोंमें ब्रिटिश भारतके प्रतिनिधि हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे। इसके अलावा संघा-असेम्बलीमें देशी रियासतोंसे जो प्रतिनिधि जायँगे वे रियासतोंकी प्रजा द्वारा चुने नहीं जायंगे बल्कि राजाओं द्वारा नामजद किये जायंगे। यह संघात्मक योजना हमारे लिये विचारणीय है। हम संघ व्यवस्थाके उसूलन खिलाफ नहीं हैं। यह बहुत सम्भव है कि स्वतन्त्र भारत एक संघात्मक राष्ट्र हो। लेकिन मौजूदा संघ शासन (फिलहाल ब्रिटिश सरकारने सुदूर भविष्यके लिये इस योजनाको स्थगित कर दिया है) हमारी गुलामीका एक ऐसा संघ है जो हमारे राजनीतिक और सामाजिक अधिकारोंको देशमें सबसे पिछड़े हुए लोगोंके हाथमें सौंप देता है। मौजूदा भारतीय रियासतोंका जन्म उन्नीसवीं सदीके आरम्भमें उस समय हुआ जबकि भारतमें ब्रिटिश शासन का पैर भी ठीक-ठीक नहीं जम पाया था। इन रियासतोंके स्वेच्छाचारी शासकोंके साथ होनेवाली वे सन्धियां भी उसी समयसे आरम्भ होती हैं, जो आज हमारे सामने ऐसे पाक इकरारनामोंके रूपमें रखी जाती हैं, जिन्हें हम छू भी नहीं सकते। इन सन्धियोंको दीमक चाट चुके हैं और ये इस तरह सड़ गयी हैं कि इन्हें उठाकर अब रद्दीकी टोकरीमें नफरतके साथ फेंक देनेकी जरूरत है। यहांपर हिन्दुस्तानकी उस समयकी अवस्थाका, उसी समयकी यूरोपीय अवस्थासे मुक़ाबला करना मुनासिब जान पड़ता है। उस समय यूरोपमें अनेक बड़ी और खुद-मुख्तार रियासतें थीं जिनके शासक बड़े स्वेच्छाचारी थे। शाही विशेषाधिकारों और पाक-सुलहनामोंकी बहुतायत थी। गुलामीकी प्रथा भी जारी थी। लेकिन पिछले सौ वर्षोंमें यूरोपका ऐसा काया-पलट हो गया है कि आज उसका पहचानना असम्भव-सा है। अनेक इन्किलाबों और तब्दीलियोंका यह नतीजा हुआ है कि तमाम छोटी-छोटी

रियासतें मिट गयी हैं और अब विरले ही राजा रह गये हैं। गुलामीकी प्रथा भी जाती रही। वर्तमान उद्योग-धन्धोंकी बहुत बड़ी उन्नति हो गयी है। प्रजासत्तात्मक संस्थाओंकी तरक्कीके साथ-साथ वोट देनेके अधिकारका दायरा भी बराबर बढ़ाया गया है। कुछ देशोंमें तो फासिस्ट तानाशाहीने इनका स्थान ले लिया है। पिछड़ी हुई जागीरदारियोंका निशानतक मिट गया है। पिछड़े हुए रूसने एक लम्बी छलांग ली है और वहां पंचायती प्रजातन्त्रात्मक साम्यवादी राज्य कायम करके उसने ऐसा आर्थिक संगठन किया है जिससे उसे चारों दिशाओंमें आशातीत सफलता मिली है। दुनिया बराबर बदलती ही गयी और आज भी वह एक व्यापक परिवर्तनकी बाट उत्सुकतासे जोह रही है। लेकिन भारतीय रियासतोंमें कोई तब्दीली नहीं हुई। वे अबतक ज्योंकी त्यों अपनी जगह कायम हैं और इस नित्य परिवर्तनशील संसारमें वे आजकी भी दुनियाको उन्नीसवीं शताब्दीकी उनींदी आंखोंसे देख रहे हैं। रियासतोंकी पुरानी शर्तें और सुलहनामें पवित्र जरूर हैं, जो जनता और उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा नहीं बल्कि उनके स्वेच्छाचारी शासकोंके साथ तय हुई हैं।

यह एक ऐसी बात है कि जिसे कोई जागृत राष्ट्र अथवा चेतनाशील जाति कभी बर्दाश्त नहीं कर सकती। हम सौ वर्षोंसे भी पुराने उन समझौतों और सुलहनामोंको स्थायी नहीं मान सकते। भारतीय रियासतोंको स्वतन्त्र भारतकी शासन-योजनाके अनुकूल बनाना होगा और वहांके निवासियोंको भी वही व्यक्तिगत, नागरिक और प्रजातन्त्रमूलक अधिकार प्राप्त होंगे जो कि दूसरे भारतीयोंको प्राप्त हो रहे हैं। कांग्रेस इस तरहका ऐलान भी कर चुकी है और इस ऐलानको कांग्रेसके सालाना-जलसोंमें बराबर दुहराया जाता है। इधर कुछ दिनोंसे संधियों और रियासतोंके सर्वाधिकारोंकी चर्चा होने लगी है। इसके पहले इनके बारेमें शायद ही कभी कुछ सुनायी पड़ा हो। देशी

राज्योंके राजाओंको साम्राज्य-योजनामें अपना ठीक स्थान मालूम था और ब्रिटिश सरकारका उन पर जो अधिकार था प्रभुत्व था वह साफ दिखायी पड़ता था। लेकिन हिन्दुस्तानमें राष्ट्रीय आन्दोलनकी बढ़ती हुई लहरने इन शासकों-को एक नकली अहमियत दे दी। ब्रिटिश सरकार हमारे देशके राष्ट्रीय विचारोंको दबानेके लिये इनकी सहायता और सहारे पर अधिक भरोसा करने लगी। राजाओं और उनके वजीरोंने इस परिवर्तनको फौरन ही भांप लिया और उन्होंने इससे फायदा उठाना शुरू किया। वे ब्रिटिश सरकार और भार-तीय जनताको, एक दूसरेसे भिड़ाकर दोनोंसे लाभ उठानेकी कोशिशोंमें काफी कामयाब भी हुए। इसीलिये संघ-योजनामें उन्हें असाधारण अधिकार भी मिले हैं। अपने स्वेच्छाचारके अधिकारको पूरी तरह सुरक्षित रखते हुए, जिस पर रियासतोंके अलावा देशके दूसरे हिस्सेका कोई अख्तियार नहीं है, उन्होंने इस हिस्से पर ये अधिकार प्राप्त किये हैं।

आज हम उन्हें ऐसी बातें करते सुनते हैं कि गोया वह आजाद हैं और संघ-योजनामें शरीक होनेके लिये अपनी शर्तें पेश करते हैं। वायसरायका उनपर जो अधिकार है, जिसे सार्वभौम सत्ता (Paramount Power) के नामसे पुकारा जाता है, उसे भी खतम करनेकी चर्चा चल रही है ताकि ये रियासतें दुनियामें अपने इसी नग्न रूपमें अकेली ही कायम रहें और अपनी इच्छाके अनुसार जो काररवाई उचित समझें बिलकुल स्वतन्त्र होकर करें। उनको बदलने या हटानेका कोई विरोधात्मक तरीका न हो। इससे भी एक खतरनाक चीज कुछ रियासतोंमें सेनाका सुचारुरूपसे संगठित होना है। इन भारतीय रिया-सतोंमें जनताकी आवाज़का कोई मूल्य नहीं है। इन रियासतोंमें कांग्रेसके और देशी राज्य प्रजामण्डलके आंदोलनोंको बुरी तरह कुचला जाता है, कार्यकर्ताओं-को कड़ीसे कड़ी सजाएं दी जाती हैं। नरेशवर्ग ब्रिटेनके प्रति अपनी वफा-

दारीका ऐलान करनेमें कभी नहीं थकते। लेकिन सार्वभौम सत्ता द्वारा उनके सामने रखे गये आदर्शों और नीतियोंको उन्होंने वफादारी और विश्वासके साथ कभी नहीं निभाया। चालीस सालसे ऊपर हो गये, ग्वालियरके अपने याद रखने लायक भाषणमें तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जनने घोषित किया था—"× × × देशी नरेश साम्राज्यमें सम्राटके प्रति वफादार रहते हुए खुद अपनी प्रजाके प्रति मौज-शौकमें फंसे रहकर गैरजिम्मेदार और निरंकुश शासन नहीं कर सकते। उन्हें जो सत्ता प्राप्त है उसका दुरुपयोग नहीं, सदुपयोग करना चाहिये। अपनी प्रजाका उन्हें स्वामी ही नहीं, सेवक भी होना चाहिये। उनके लिये यह जान लेना आवश्यक है कि राजकी आमदनी उनके स्वार्थपूर्ण उपयोगके लिये नहीं बल्कि प्रजाकी भलाईके लिये है। उनके अन्दरूनी शासनमें उसी हदतक दखलन्दाजी नहीं की जायगी जिस हदतक कि वह ईमानदार रहेंगे। उनकी राजगद्दी स्वच्छन्द भोग-विलासकी चीज नहीं बल्कि कर्त्तव्यपालनका भार है। पोलोके मैदान या घुड़दौड़ अथवा यूरोपियन होटलोंमें ही उनका काम नहीं है। उनका असली काम, राजाकी हैसियतसे उनका कर्त्तव्य तो, उनके अपने प्रजाजनोंके बीच ही है। मैं तो हर हालतमें उन्हें इसी कसौटीपर कसूंगा। अन्तमें इसी कसौटीपर या तो राजाकी राजनीतिक संस्था मिटेगी या—बचेगी!!"

हार्डिंग, नार्थब्रुक, हैरिस, कैनिंग, मेयो तथा चेम्सफोर्डने भी अपनी घोषणाओंमें इसी नीति और सिद्धान्तकी ताईद की है। भारतीय राजाओंको लार्ड इर्विनका जो मशहूर गश्तीपत्र (Irwin Memorandum) भेजा गया था उसमें भी राजाओंको मित्रतापूर्ण सलाह दी गई थी। उस मेमोरेण्डममें सलाह दी गई है—'वहां कानून और व्यवस्थाका राज्य होना चाहिये जिसका आधार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें जातिका व्यापक कल्याण हो। वैयक्तिक स्वतन्त्रता और अधि-

कारोंको संरक्षण मिलना चाहिये तथा कानूनके आगे राज्यके सब लोगोंको समान माना जाना चाहिये। न्याय विभागमें ऐसे दृढ़ और योग्य आदमियोंको रखना चाहिये जो शासन-विभागके मनमाने हस्तक्षेपसे सुरक्षित रहें और जबतक अपना कर्तव्य पालन करें तबतक हटाये न जा सकें। राजाका निजी खर्च इतना कम होना चाहिये जो उसकी हैसियत और प्रतिष्ठा कायम रखनेके लिये पर्याप्त हो; जिससे सरकारी आमदनीका यथासंभव अधिकसे अधिक भाग लोगोंकी उन्नतिके लिये उपलब्ध हो सके।" बटलर कमेटीकी रिपोर्टमें जो अंक दिये गये हैं उनके अनुसार राजाके निजी खर्चकी रकम निश्चित करनेका प्रयत्न भी सिर्फ ५६ राज्योंने ही किया है। बटलर कमेटीको पता लगा है कि अनेक राज्योंमें मुहाफिज खाने भी व्यवस्थित रूपमें नहीं हैं; विभिन्न राज्यों द्वारा आय-व्ययके जो तखमीने या अन्य आर्थिक वक्तव्य निकाले जाते हैं वे हिसाबकी छानबीन करनेवाली स्वतन्त्र-पद्धतिकी कसौटी पर टिक भी सकेंगे, इसमें शक है। फलतः राजघरानेकी शान-शौकतके लिये राज्योंकी प्रजाको अपना पेट काटकर जो रकम चुकानी पड़ती है वह दरअसल बहुत अधिक है और नरेशोंके लिये शर्मनाक है। स्वयं नरेन्द्र-मण्डल (Chamber of Princes) ने फरवरी १९२८ ई० में एक प्रस्ताव पास किया था जिसमें राजाओंसे प्रार्थना की गयी थी कि—"राजाके खालिस निजी खर्चको उचित आधार पर बांध दिया जाय जो राज्यके सार्वजनिक खर्चसे सर्वथा अलग रहे।" लेकिन अधिकांश नरेशोंने मण्डलके प्रस्तावको अमलीरूप देनेमें जो बिलकुल उपेक्षा दिखलायी है उसकी खुद उनके ही वर्गके एक सदस्यने कड़ी आलोचना की है और उसे ऐसी राजनीतिक भूल बतलाया है जिससे और नहीं तो 'कमसे कम नैतिक दृष्टि-कोणसे तो जरूर उनकी स्थिति कमजोर होगी ही।' राजाओंकी यह आलोचना सीतामऊके महाराज कुमार रघुवीर सिंहने 'भारतीय रजवाड़े' नामक अपनी

पुस्तकमें की है । नरेश वर्ग ब्रिटेनके प्रति अपनी वफादारी की घोषणा करनेमें कभी नहीं थकता । लेकिन वह वफादारी अगर राज्यके खजानेसे ब्रिटेनके युद्ध-कोषमें मदद देने और अपने गुलाम प्रजाजनोंको लामपर भेज देने तक ही सीमित रहे तो उसका कोई बहुत मूल्य न होगा । प्राचीन सामंतशाहीके पोषक और तानाशाहीके जीते-जागते पुतले ये भारतीय रजवाड़े 'लोकतन्त्रवाद' के लड़नेमें बहुत कारगर नहीं हो सकते । ब्रिटेनके प्रति वफादारीका मतलब उसके द्वारा घोषित उद्देश्यों व आदर्शोंके प्रति वफादारी भी जरूर होनी चाहिये । लेकिन सार्वभौमसत्ता द्वारा हमारे राजन्य वर्गके सामने जो आदर्श रखे गये हैं उसकी पूर्ति उसने कभी नहीं की । दासता और गुलामीसे मिलती-जुलती हालतें अभी भी वहां प्रचलित है । वहां दारोगा, और चेला जैसे लोगोंकी कानूनन जो स्थिति होनी चाहिये और वस्तुतः जो स्थिति है उसका पता लगानेके लिये अगर कोई जांच-कमीशन मुकर्रर किया जाय तो हम दावेके साथ कह सकते हैं कि वह बेकार साबित न होगा । प्रो० आर्थर कीथने बतलाया है कि—"राजका विधान किसी भी हालतमें ऐसा नहीं है जिससे नरेश बंधे हों । ब्रिटिश भारतकी तरह कानूनसे शासन होने जैसी कोई बात ही यहां नहीं है । भारतीय शासन विधानके मसविदेमें रियासतोंकी प्रजाके मौलिक अधिकारोंका उल्लेख इस लिये नहीं किया जा सका, क्योंकि वे राज्योंको मंजूर नहीं हो सकते थे ।"

कांग्रेस समस्त भारतको स्वाधीन करनेका ऐलान कर चुकी है । वह यह नहीं देख सकती कि ब्रिटिश भारतमें तो उत्तरदायी सरकार कायम हो और देशी रियासतोंमें वही पुराना स्वेच्छाचारी शासन प्रचलित रहे । ब्रिटिश भारतकी देखा-देखी रियासतोंकी प्रजामें भी नया जागरण पैदा हुआ है । कांग्रेस रियासतोंकी प्रजाके साथ है और प्रजा कांग्रेसके साथ । यही कारण है

कि देशी राज्योंमें उत्तरदायी शासनकी प्राप्तिके लिये वहांके प्रजाजनों द्वारा उग्र आन्दोलन छिड़ा हुआ है। राज्योंकी सरकारें भी प्रजाके न्यायोचित आंदोलनको दबानेके लिये उग्र उपायोंसे काम ले रही हैं। आज नवजाग्रत भारतमें इन नरेशोंका अगर कोई सच्चा शुभ चिन्तक है तो वह महात्मा गांधी हैं। मगर नरेश वर्गकी करतूतों और उनकी स्वेच्छाचारिताको देखकर महात्मा गांधीको भी 'हरिजन' में लिखना पड़ा कि—'राजा लोगोंके लिये केवल दो मार्ग रह गये हैं। शासनकी जिम्मेदारी प्रजाको सौंप कर स्वयं उनके अभिभावक बने रहना तथा अपने परिश्रमके बदले कुछ मुआवजा लेते रहना या फिर राज्यके विनाशके लिये तैयार रहना। इन दो रास्तोंके सिवा और कोई बीचका रास्ता नहीं।........मैं तो यहांतक कहूंगा कि सार्वभौम सत्ताके नाते जिस तरह ब्रिटिश सरकारका यह फर्ज है कि वह भीतर या बाहरसे पहुंचनेवाली क्षतिसे राजाओंकी रक्षा करे, उसी तरह या उससे भी ज्यादा यह देखना उसका फर्ज है कि राजा लोग अपनी प्रजा पर न्यायपूर्ण शासन करते हैं या नहीं।" महात्मा गांधीने जो वाजिब एवं समयानुकूल सलाह राजाओंको दी है उसे उन्हें वक्त रहते मान लेना चाहिये; वरना उनका अस्तित्व खतरेमें है। जमानेकी रफ्तार और प्रगतिकी हाहाकारमें भी उत्ताल तरंगोंको रोक देना उनकी शक्तिके बाहरकी बात है।

× × ×

भारतके धुंधले राजनीतिक क्षितिज पर एक और धूमकेतु दिखायी दे रहा है। श्री एम० एन० राय भी कांग्रेसके खिलाफ बगावतका झण्डा लेकर घूमने लगे हैं और फासिस्ट विरोधी मोर्चा कायम करनेके बनावटी नाम पर वे अब देशकी प्रतिक्रिया गामी शक्तियोंका संगठन करनेमें लगे हैं। वे कांग्रेसको भारतीय स्वाधीनताका शत्रु और पांचवा दस्ता (Fifth column)

बताते हैं। भारतीयोंके लिये श्री राय एक पहेली हैं। वे सदा हो एक रहस्य पूर्ण व्यक्ति रहे हैं। भारतीय राजनीतिमें उनकी गतिविधि हमेशा संदेहकी दृष्टिसे देखी जाती रही है। कांग्रेसमें उनका शामिल होना; कांग्रेसके भीतर कोई पार्टी बनानेका उनका विरोध, फिर अपनी ही एक अलग पार्टी बनाना और अन्तमें कांग्रेस विरोधी दलोंसे सहयोग करनेके लिये पागलकी तरह दौड़ना आदि उनकी कारवाइयां दरअसल उलझनमें डाल देनेवाली हैं। अब वे फासिज्म और नाजिज्मका विरोध करनेके लिये ब्रिटिश सरकारसे बिना शर्त सहयोग करने पर उतर आये हैं। भारतकी आजादीका प्रश्न और साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रचण्ड आन्दोलन करके संसारमें साम्यवादका प्रचार करनेकी उनकी फिलासफी खतम हो गयी है। वे अपना मार्क्सवाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) भूल बैठे हैं। अब वे ब्रिटिश साम्राज्यवादका सबसे बड़ा समर्थक होनेका दावा करते दिखलायी दे रहे हैं। वे कांग्रेसको, कांग्रेसके आन्दोलनको देशके लिये घातक बताते हैं और उनका कहना है कि कांग्रेसका नाम-निशान मिटा देनेमें ही भारतकी भलाई है। चीनमें असफल होकर, कम्यूनिस्ट पार्टीसे निकाले जानेपर और शृङ्खलाबद्ध असफलताओंका लज्जाजनक सेहरा बांधकर अब वे भारतमें अपनी सजलस और मराली हुई हसरतोंको पूरा करनेका ख्वाब देख रहे हैं। वे कांग्रेस द्वारा नफरतसे ठुकराई गयी मिनिस्टरियों पर चिपकनेकी कोशिशमें हैं। इसीलिये वे मुस्लिम लीगवालोंसे, माडरेटों, लिबरलों और सरकारपरस्तोंसे मिलकर प्रान्तोंमें खिचड़ी मन्त्रिमंडल बनानेके लिये दौड़धूप कर रहे हैं। वे पक्के क्रान्तिकारी थे और ब्रिटिश साम्राज्यवादके सबसे बड़े शत्रु बनते थे। लेकिन आज उनकी करतूतोंको देखकर उनके समर्थक तक परेशान हैं। १ दिसम्बर १९४० को पटनामें डा० सच्चिदानन्द सिनहाकी अध्यक्षतामें

हुई एक सभामें उन्होंने एक जहरीला भाषण दिया था जिसमें कांग्रेसको निशाना बनाकर उन्होंने फरमाया था कि—"हमें अपने देशके भीतर भी फासिस्टवादसे लड़ना है। 'पांचवें दस्ते' का नाम-निशान मिटा देना है। 'पांचवें दस्ते' वाले फ्रान्सके पतनके कारण हुए थे। भारतमें भी यह 'पांचवां दस्ता' मौजूद है। कांग्रेसकी राजनीतिज्ञताका दिवाला निकल गया है।" आज श्री एम० एन० रायकी इन बातोंको सुनकर ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंको जो खुशी होती होगी वह बयानके बाहर है। श्री राय भारतके प्रतिक्रियागामियोंसे, साम्प्रदायिकोंसे, साम्राज्यवादियोंसे, माडरेटों और जी-हुजूरोंसे मिलकर भारत को फासिस्टवादके खतरेसे बचानेका प्रबल प्रयास कर रहे हैं। उनकी इन हर-कतोंको देखकर और 'देशकी भलाई' के लिये उनके गिरोहकी करतूतोंका ख्याल करके हमें तो कहना पड़ता है:—

"पड़े हैं सूरते नक्शे कदम, न छेड़ो हमें,
हम और खाकमें मिल जायँगे उठाने से।"

११

हमारी उलझन

भारतवर्षकी मौजूदा स्थिति बड़ी उलझनपूर्ण है। हम बड़ी विकट परिस्थितियोंसे होकर गुजर रहे हैं। हमारी समस्याएं महान हैं,हमारी पहाड़-जैसी दिक्कतों और परेशानियोंकी चोटियां गौरीशंकरसे भी ज्यादा ऊंची और खतरनाक हैं। लेकिन परेशानियोंपर विजय पाना भी बहादुरोंका काम है। हम प्रयत्नशील हैं। हो सकता है, थोड़े समयके लिये हताश होकर हम अपनी पराजय मंजूर कर लें लेकिन पराजयको विजयमें बदल देनेकी ताकत और क्षमता भी हममें है। पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताका यह वाक्य, जो सजीव बिजलीके तारकी तरह हमें जोश, स्पन्दन और उत्साह प्रदान करता है, प्रत्येक भारतीयको हृदयंगम कर लेना चाहिये कि—"Success often comes to them who dare and act, it seldom goes to timid." यानी—'कामयाबी अक्सर उसे ही नसीब होती है जो हिम्मतके साथ कर गुजरता है,वह बुजदिलोंको बहुत कम नसीब होती है।' साहसके साथ अपने लक्ष्यकी ओर निरन्तर

अग्रसर होते रहना ही तो मनुष्यका धर्म है। सफलता और असफलताका विचार छोड़ कर हमें कर्मवीर बनना है। 'कर्मण्येएवाधिकारेस्तु मा फलेषु कदाचन !' फिर हमारी उलझनें खुदबखुद सुलझ जायंगी।

वर्तमान भारतवर्ष प्रसव वेदनाके संक्रान्त कालसे होकर अपने उस सुनहले भविष्यकी ओर बढ़ रहा है जो कालीरजनीके पर्देमें ऊषाकालीन रविकी लालिमा लिये छिपा है। अगर कमलिनीके लिये निशा है तो कमलके लिये दिवस है। संसार आशापर जीता है और आशाकी प्रबल धुरी पर ही वह टिका है। हम आशावादी हैं। हम अपनी राष्ट्रीय उलझनोंको अवश्य सुलझायेंगे, अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करेंगे। हमारी राष्ट्रीय उलझनोंकी फेहरिस्त काफी लम्बी है। स्वराज्यकी समस्या आज सबसे बड़ी समस्या है। इसीमें अन्य सारी छोटी-बड़ी समस्याएं सन्निहित हैं। किन्तु उन सन्निहित समस्याओंपर भी हमें विचार करना लाजिमी है। कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनताके लिये लड़ रही है। हिन्दू सभावादी और माडरेट औपनिवेशिक स्वराज्य पर ही रजामंद हैं। मुस्लिम लीग हिन्दुस्तानमें पृथक मुसलमानी सल्तनत कायम करनेके लिये पाकिस्तानकी मांग पेशकर रही है। हिन्दू नेता हिन्दू राज्यका काल्पनिक नक्शा खींच रहे हैं। एक तरफ राष्ट्रीयताकी इमारत खड़ी की जा रही है तो दूसरी तरफ साम्प्रदायिकताका विष-वृक्ष सींचा जा रहा है। कांग्रेस केन्द्रमें राष्ट्रीय सरकार कायम करनेकी मांग रखती है तो कांग्रेसके विरोधी वायसरायकी शासन सभा—एक्जिक्यूटिवमें ही सीट पानेका सौदा करते हैं। कांग्रेस जब यह कहती है कि भारतका भावी विधान बनानेके लिये राष्ट्रीय-पंचायत (Constituent Assembly) बुलानेका अधिकार दिया जाय तो मि० जिन्ना कहते हैं कि हिन्दुस्तानकी जनता इस कदर अशिक्षित और मूर्ख है कि वह राष्ट्रीय पंचायत का अर्थ ही नहीं समझ सकती। मि० जिन्नाको अक्लका ऐसा अजीर्ण हो

गया है कि वे अपने सिवा और सबको बेअक्ल तथा नासमझ समझते हैं। एक तरफ भारतके करोड़ों किसान और मजदूर खेतों और कारखानोंमें पशुवत जीवन बिता रहे हैं तो दूसरी तरफ जमींदारों और पूंजीपतियोंके शोषणका फौलादी पंजा और जोरसे चुभता जा रहा है। एक तरफ अट्टालिकाएं अट्टहास कर रही हैं तो दूसरी तरफ झोपड़ोंके करुण क्रन्दन सुनायी दे रहे हैं। हमारी देशी रियासतोंकी बात ही निराली है। वे दुनियांमें रहकर भी अपनेको दुनियां का बाशिन्दा नहीं समझतीं। प्रजाकी चीत्कार सुनकर उन्हें नर्तकीके नूपुरोंकी झंकार याद आती है। बेहिसाब खर्च करने, साकी और शराबमें मस्त रहने, बेहोशीका मजा लेने और पोलोके घोड़ों तथा शिकारके कुत्तोंका शौक करनेमें ही वे अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ बैठे हैं! और हम सबपर शासन करने वाली सरकार? वह हमारी फूट, हमारा बेसुरा राग, हमारी बेहोशी और निराशा तथा निरुत्साह देखकर खुश है। उसे हमारी परवाह नहीं है। वह हमारी बिखरी ताकत और बेतुकी आवाजसे फायदा उठा रही है। हमें 'फूट' और 'बैर' ज्यादा मीठे लगते हैं न। हमें मीठा जहर पिलाया जाता है और हम बड़े चावसे पी लेते हैं। कुनैनकी गोली मलाईमें लपेटकर हमें निगलनेको दी जाती है और हम उसे फौरन अपने हलकके नीचे उतार देते हैं। अब देखना तो यह है कि हमारी इस नासमझी और फूटसे हमारे शासक कब तक, किस हद तक फायदा उठाते हैं। लेकिन अमेरिकाके महापुरुष अब्राहिम लिंकनके इस चिर सत्य वाक्यकी ओर हम अपना और उनका सबका ध्यान आकृष्ट करेंगे कि— "You can fool some of the people all the time and all the people some of the time, but you cannot fool all the people all the time.' यानी—"तुम थोड़े आदमियोंको हमेशाके लिये और सब आदमियोंको थोड़े समयके लिये बेवकूफ बना सकते हो। मगर सब लोगोंको

हमेशा बेवकूफ बनाकर नहीं रख सकते।" अगर इश सच्चाईको हम और वह दोनों समझ जायं तो हमारी सारी उलझनें बातकी बातमें सुलझ जायं और यदि वक्त रहते नहीं समझेंगे तो भविष्य समझायेगा—जरूर समझायेगा।

मि० जिन्नाके कल्पित-बहिश्त पाकिस्तान पर भी जरा विचार कर लें। वे यदि उनके चन्द सरमायादार साथी भारतके उन नौ करोड़ मुसलमानोंको गुम-राह करने पर तुले हुए हैं जिनके पूर्वजोंकी लाशें हिन्दुस्तानकी जमीनके पर्देमें सो रही हैं, जो हिन्दुस्तानकी आबोहवामें पले हैं और जिनके बच्चे यहींकी धूलमें खेल-खेलकर बड़े हुए हैं। मि० जिन्ना कहते हैं कि हिन्दुस्तानकी समस्याओं को हल करनेका सिर्फ एक ही रास्ता अब रह गया है और वह है पाकिस्तान। इस देशको दो हिस्सोंमें, हिन्दू-भारत और मुस्लिम भारतमें बांट दिया जाय बस—सारी उलझनें आपसे आप सुलझ जायंगी। कांग्रेसकी आलोचना करते हुए वे कहते हैं कि—कांग्रेसकी मांगोंमें कुछ भी दम नहीं है। वह बिलकुल वाहियात है। कांग्रेस चाहती है कि ब्रिटिश सरकार भारतको उसके कहनेसे आजाद कर दे। ऐसा कहीं हुआ है? तवारीखके पन्नोंमें ऐसी एक भी मिसाल नहीं है कि किसी देशको भीख मांगनेसे आजादी मिली हो। आजादी कोई देता नहीं। वह तो बूते पर ली जाती है। मि० जिन्नाकी यह बात दरअसल काबिले तारीफ है; हम उनकी दलीलके कायल हैं। हमें खुशी है कि मि० जिन्ना जैसा विधानवादी भी यह महसूस करने लगा है कि आजादी मांगेसे नहीं मिलती बल्कि प्राप्त की जाती है। मि० जिन्ना क्रान्तिकी असलियतको समझनेसे लगे हैं। शायद मि० जिन्नाको यह सुनकर अचरज होगा कि उनकी इस रायसे कांग्रेस सोलह आने सहमत है। कांग्रेस आजादी मांगती नहीं बल्कि उसे हासिल करनेके लिये कुर्बानीके रास्ते पर चल रही है। समूचे देशकी स्वाधीनताके लिये कांग्रेसने देशव्यापी संघर्ष छेड़ रखा है। मगर मि० जिन्ना

और उनके जैसे चन्द लोग आजादीकी राहके रोड़े हो रहे हैं। जनाब जिन्ना साहब एक तरफ तो यह कहते हैं कि आजादी हासिल की जाती है, मांगी नहीं जाती; किन्तु दूसरी तरफ वे ब्रिटिश सरकारसे 'देशकी हुकूमतमें पुर-असर और वास्तविक हिस्सा' भी मांगते हैं—और बतौर 'बखशीश' के यह हिस्सा मांगते हैं। उन्हें मालूम होना चाहिये कि जब आजादी मांगनेसे नहीं मिल सकती तो 'पुरअसर और वास्तविक अधिकार' भी मांगेसे नहीं मिल सकता। मि० जिन्ना परस्पर विरोधी बातें करनेमें सिद्धहस्त हैं। उनकी दलीलोंका कोई तारतम्य नहीं होता। उन्हें भारतके करोड़ों बहादुर मुसलमानों की ताकतमें सन्देह है और अपनी लचर दलीलोंके वजनमें भी उन्हें काफी शक है। मुसलमानोंके 'कायदे आजम' बने रहनेके लिये पाकिस्तान तो महज एक बहाना है—एक धोखा है। भारतके नौजवान मुसलमान मि० जिन्नाकी इस बहानेबाजीको समझ गये हैं। अब उन्हें अधिक दिन तक अंधेरेमें नहीं रखा जा सकता। वतनपरस्त और इस्लामपरस्त सच्चे मुसलमानोंको अब यह ऐलान कर देना चाहिये और जिन्ना साहबसे साफ अलफाजोंमें कह देना चाहिये कि—"Thus furthor for and no further!" बस, यहीं तक; अब और आगे नहीं।

कांग्रेसकी स्थिति बिलकुल साफ है। कांग्रेस हिन्दुस्तानमें हिन्दुओं या मुसलमानोंकी हुकूमत कायम करना नहीं चाहती। कांग्रेस तो हिन्दुस्तानकी हुकूमत के लिये हिन्दुस्तानियों द्वारा बनाया गया एक ऐसा विधान चाहती है जो न सिर्फ मुसलमानोंके लिये, न सिर्फ बहुमतके लिये बल्कि तमाम फिरकों, तमाम मजहबों, तमाम अकसरियतों और तमाम अकलियतोंके लिये काबिले इत्मीनान हो और इसमें उनको किसी किस्मका खतरा अपने लिये नजर न आता हो। कांग्रेस हिन्दुस्तानकी मुकम्मिल आजादी चाहती है, हिन्दुस्तानमें हिन्दुस्तानका

बना हुआ विधान जारी करना चाहती। कांग्रेस किसी खास फिरका या किसी खास जमातकी हुकूमत कायम करना नहीं चाहती। कांग्रेस सिर्फ यह चाहती है कि हिन्दुस्तानमें वह हुकूमत कायम हो और हुकूमतका वह विधान हो जो हिन्दुस्तानके अन्दर रहनेवाले हरेकके लिये काबिले इत्मीनान हो और उसके दिलको यह तसल्ली दे कि वह अपने मुल्कके अन्दर निहायत आजादी और अमनकी जिन्दगी बसर कर सकेगा। कांग्रेसका यही मकसद है और इसे किसी तरह भी झुठलाया नहीं जा सकता। लेकिन हमारे शासक अंग्रेज राज-नीतिज्ञ हमेशा यह फरमाया करते हैं कि हिन्दुस्तानमें अनेक जातियां हैं और उन जातियोंमें परस्पर बेहद फूट और अविश्वास है इसलिये उसे आजादी नहीं मिल सकती। सिर्फ फूट और इख्तिलाफातकी बुनियाद पर, सिर्फ इस बुनियाद पर कि हिन्दुस्तानमें हिन्दू रहते हैं, मुसलमान रहते हैं, अछूत, ईसाई और पारसी रहते हैं और उनके अन्दर धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मतभेद हैं इसलिये वह आजादी हासिल करनेके काबिल नहीं है। लेकिन इस किस्मके झगड़े कहां नहीं थे। वह कौनसा मुल्क है जहां मजहब, जबान या कल्चरके मतभेद न रहे हों। लेकिन दुनियाके किसी भी देशकी फूट तब तक दूर नहीं हुई जब तक उस देशकी अपनी हुकूमत नहीं कायम हुई; अपना बनाया हुआ विधान नहीं लागू हुआ। आज हिन्दुस्तानमें हमसे यह कहा जाता है कि पहले अपने इख्तिलाफात दूर करो और जब तुम्हारे आपसी झगड़े दूर हो जायँ तो हमारे सामने अपना मुतालबा पेश करो। कौन मुल्क ऐसा है जहां पहले इत्तहाद हो गया हो, पहले फूट मिट गयी हो और बादको आजादी हासिल हुई हो? इतिहास यह बतलाता है कि अपना शासन पहले कायम हुआ, अपना विधान पहले बना और उसके साथ-साथ फूट मिट गयी, इख्ति-लाफात दूर हो गये। आज हमारे यहां जो फूट पैदा है वह तो हुकूमतकी

पैदा की हुई है। वह कैसे दूर हो सकती है जबतक ब्रिटिश पार्लमेंटका बनाया हुआ विधान तबदील न किया जाय। क्या आजके कांस्टिट्यूशनमें, क्या आजके गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्टमें और क्या इसके पहलेके निजाम हुकूमत में साम्प्रदायिक निर्वाचनकी प्रणाली मौजूद न थी? क्या स्वयं ब्रिटिश सरकार ने ही फिरकोंको तकसीम नहीं किया है? क्या आज हमारे मुल्क और हमारे सूबोंके अन्दर फिरकेवाराना चुनाव मौजूद नहीं हैं? क्या स्पेशल कांस्टिट्यूशन नहीं हैं और वे सारी चीजें नहीं हैं जो फूट और मनमुटावकी बुनियाद हैं? यह सब रहते हुए हमसे कहा जाता है कि तुम पहले इनको दूर करो, पीछे आजादीका सवाल उठाओ। जबतक मौजूदा विधान दूर नहीं किया जायगा और जबतक विधानकी उन बुराइयोंको मिटाया नहीं जायगा जिनके मातहत हिन्दुस्तानियोंको लड़ाया जाता है तबतक हम अपनी आपसी फूट और अपने आपसी झगड़ेको कैसे दूर कर सकते हैं? इन फूटोंकी आड़में भारतवासियोंसे कहा जाता है कि इनके रहते हुए तुम्हारी मांग पूरी नहीं की जायगी। लेकिन हमारी फूट तो खुद हुकूमतकी पैदा की हुई है। वह बगैर उसके तबदील किये हुए नहीं जा सकती। हमारे वायसराय और भारत-सचिव ताशके पत्तोंको उलटते हैं तो देखते हैं कि कोई सुर्ख है, कोई सियाह है, कोई ईंट है और कोई पान है, कोई हुक्म है, कोई चिड़िया है और इसके अन्दर कोई बादशाह, कोई गुलाम है। इन बावन पत्तोंको देखकर उनकी आंखें चौंधिया जाती हैं और वे कहते हैं कि कितनी बड़ी फूट है हिन्दुस्तानमें। मगर उन्हें यह नजर नहीं आता कि वे बावन पत्ते एक ही हैं। वह एक ताश है, दो या तीन या चार ताश नहीं। दुनियाने उसे हमेशा ही एक ताश कहा है और आइन्दा उसे एक ही कहेगी। लिहाजा वह एक चीज है जिसमें मेल भी नजर आता है और फूट भी। लेकिन हमारे शासकोंको उसमें

फूट ही दिखायी देती है, मेल नहीं। इन्सान एक होता है परन्तु उसके जिस्म के हर हिस्सेकी शकल अलग होती है। वह कौन जगह है, वह कौन-सी चीज दुनियाकी है, जिसके अन्दर फूट नहीं है। अगर इन भेदों और फूटोंका इस्तेमाल नेकनियतीसे किया जाय तो बहुत फायदा हो सकता है। दुनियाके इस भेद और बेमेलको महाकवि जौकने बड़े दार्शनिक ढङ्गसे अपने एक शेरमें बयान किया है। शायर कहता है:—

"गुलहाय रंग रंगसे है जीनते चमन,
ऐ जौक इस जहांको है जेब इख्तिलाफसे !"

हमारी फूटको लेकर उसे इस कदर उभारा गया है और मौजूदा हालतमें उसको इस दर्जेपर उभारा जा रहा है कि वह हिन्दुस्तानकी चलती हुई गाड़ीमें रोड़े अटकाता है। मुस्लिम लीगके नेता कहते हैं कि हिन्दुस्तानके मुसलमानों-को हिन्दुओंसे बड़ा खतरा है। उनका यह कहना किस हदतक सच है या किस हदतक कतई गलत है यह एक मुसलमान और पक्के मुसलमानकी जबानी सुनिये। ३० अक्तूबर १९३९ ई० को युक्त प्रान्तीय असेम्बलीमें भाषण देते हुए तत्कालीन यातायात सचिव मि० हाफिज मुहम्मद इब्राहीमने कहा था :—

" × × × कांग्रेस इसके लिये बिलकुल आमादा है कि जिस किस्मकी तकलीफ और मुसीबतका इलाज हिन्दुस्तानके मुसलमान अपने लिये चाहते हैं उसको सुनकर, उसका इलाज तजबीज करके और उनके इत्मीनानके बाद उसे कांस्टिट्यूशनमें रखा जाय। लेकिन मैं एक मुसलमान होनेकी हैसियतसे यह कहनेका हक रखता हूं कि मेरे नजदीक इन तहफ्फुजात (संरक्षणों) की कोई कीमत नहीं है। उनका कोई एतबार नहीं है और इसके (संरक्षण) जरिये हिन्दुस्तानके अन्दर जिन्दगी बसर करनेका इरादा करना तमाम मुसलमानोंको

बदनाम करना है। यह मुसलमान कौमको बुजदिल बतलाना है। मैं दरियाफ्त करना चाहता हूं कि मुसलमानोंका नबी जब इस जहांमें आया तो उसके कितने साथी थे? आज हिन्दुस्तानमें ९ करोड़ मुसलमान हैं। उस वक्त चारों तरफ 'काफिर' ही 'काफिर' थे और उसका कोई मददगार न था। उसने उनके दर्मियान अपनी सदा बुलन्द की और अपने चन्द साथियोंकी मददसे दुनियांकी बड़ी-बड़ी अक्सरियतोंको मगलूब कर दिया और इसकी बदौलत आज हिन्दुस्तानमें ९ करोड़ मुसलमान हैं। मेरे दोस्तोंका तहफ्फुज का ख्याल इस गलत उसूलीपर कायम है कि अक्सरियत (बहुमत) अकलियत (अल्पमत) को तबाह कर देती है और थोड़ी तायदादको बड़ी तायदाद फना कर देती है। मैं अर्ज करूंगा कि यह ख्याल बिलकुल गलत है और उसूल बिलकुल गलत है। दुनियाकी तवारीखके लिहाजसे गलत है और इस्लामकी तवारीखके लिहाजसे भी गलत है। आज दुनियाकी तवारीखसे एक नहीं सैकड़ों मिसालें इस बातकी पेश की जा सकती हैं कि छोटी-छोटी कौमें उठीं हैं और उन्होंने बड़ी-बड़ी कौमोंको तबाह कर दिया है। उनकी तमाम तहजीब और तमद्दन (सभ्यता एवं संस्कृति) को बदल दिया है। तवारीखमें इसकी मिसालें मौजूद हैं कि अक्सरियतपर किस तरह छोटी-छोटी अकलियतें गालिब हो जाया करती हैं। मैं पूछता हूं कि मुसलमान जब हिन्दुस्तानमें आये थे तो वह कितने थे? जब वह सिंधमें आकर बसे थे उस वक्त वह कितने थे? और उस वक्तसे उन्हें हिन्दुस्तानमें रहते कितना जमाना हो गया? उनकी नस्लोंको यहां रहते आज ९ सदियोंसे ज्यादा जमाना हो चुका है। यूरोपकी तवारीखसे भी और दीगर मुमालिककी तवारीखसे भी इसका कोई पता नहीं चलता है कि यह ख्याल कायम किया जाय कि हिन्दुस्तानकी ३५ करोड़ आबादीमेंसे २५ या २६ करोड़ हिन्दू मुसलमानोंको तबाह कर देंगे। जिस कौममें असल

जौहर है उसको कोई तबाह नहीं कर सकता। लेकिन जैसा कि मैं पहले अर्ज कर चुका हूं, अगर आप तहफ्फुज चाहते हैं तो कांग्रेस तहफ्फुजात देनेके लिये और उनको कांस्टिट्यूशनमें शामिल करनेके लिये तैयार है। किन्तु बावजूद इस बातके अगर आज उनका (मुस्लिम लीग वालोंका) रवैया यह हो कि वह आजादीके लफ्जसे भी कतराते हैं और अगर कोई रेज्यूलेशन पास करते हैं तो इस तरहसे कि वह आजादीसे पांच सौ कोस दूर हो और आजादीका ख्याल उसतक न पहुंच पाये तो मैं अर्ज करूंगा कि यह रवैया किसी कौमके लिये अपने मुल्कके साथ मुनासिब नहीं है। उन्हें तो यह कहना चाहिये कि आप तो क्या, अगर हिन्दुस्तानके दरिन्दे और परिन्दे भी हिन्दुस्तानकी आजादीकी तहरीक करें तो हम उनके साथ शरीक होनेको तैयार हैं; आप तो हमारे भाई हैं।" मि० हाफिज मुहम्मद इब्राहीमके अवतरणपर कोई टिप्पणी व्यर्थ होगी। वह एक सच्चे, मुसलमानके नेक दिलसे निकला हुआ उद्गार है। उसमें उन वतनपरस्त मुसलमानोंकी रूहानी आवाज शामिल हैं जो देशको आजाद देखनेके लिये तिलमिला रहे हैं। उसमें उन मुसलमानोंकी आत्मा बोल रही है जो तबाही और फाकेमस्तीकी जिन्दगी काट रहे हैं, जो सदियोंसे बेतरह सताये और शोषित किये गये हैं, जो मजलूम किसान और बेकस मजदूर हैं।

हमारी राष्ट्रीय उलझनोंकी दरअसल कोई सीमा नहीं है। ऊपर जिन उलझनोंपर मैंने प्रकाश डाला है उसके अलावा भी अनेक जटिल समस्याएं हमारे मार्गमें सिर उठाये खड़ी हैं। इनमें जबान और लिपि का भी एक बड़ा पेचीदा प्रश्न है। कांग्रेसने हिन्दुस्तानी जबानको भारतकी राष्ट्रभाषा करार दिया है जो हिन्दी और उर्दू, दोनों लिपियोंमें लिखी जा सकती है। इसके साथ ही साथ प्रान्तीय भाषाओंके विकासका मार्ग भी अवरुद्ध नहीं किया गया

है। हिन्दुस्तान बहुत बड़ा देश है। यहां अनेक खालिस और मिश्रित जातियोंके लोग बसते हैं। इसलिये यहां भाषाएं भी अनेक हैं और लिपियां भी। कांग्रेसने हिन्दुस्तानी जबानको, जिसमें न तो निखालिस संस्कृतके शब्द हों और न निखालिस फारसीके, राष्ट्रभाषा तो करार दे दिया मगर सब हिन्दू और सब मुसलमान कांग्रेसके इस फैसलेको नहीं मानते। हिन्दीवाले हिन्दीकी प्रधानता कायम रखनेपर आमादा हैं और उर्दूवाले उर्दूकी सरबुलन्दीपर तुले हुए हैं। एक फ्रेंच लेखकका कहना है कि—"हिन्दू अपने विद्वेषके कारण ऐसे हरेक मामलेका विरोध करते हैं, जो उन्हें मुसलमानोंकी हुकूमतके जमाने-की याद दिलाये।" उधर मुसलमानोंको, जबानके प्रश्नको लेकर भी इस्लामपर खतरा नजर आता दिखायी दे रहा है। इसलिये वे भी हिन्दीका विरोध कर रहे हैं। १८५७ में, दिल्लीकी भग्नावशिष्ट बादशाहतके लोप हो जानेके बाद, जबसे अंग्रेजी अमलदारी कायम हुई तबसे वे यह अनुभव करने लगे कि गुलाम मुल्कमें वे भी गोरोंके गुलाम हो गये। शहरी मुसलमानोंमें असंतोष, निराशा, अशांति, क्षोभ और रोषने घर कर लिया। सर सैयद अहमदखांके साथियोंमेंसे एक सज्जनने यह स्वीकार किया है कि—"इन्सान जब हर तरफसे निराश हो जाता है, तब मजहबकी शरण ढूंढ़ता है। मुसलमान धन और मान, सम्पत्ति और विभव, सब कुछ खो चुके थे। एक धर्म बच गया था, इसलिये यह उन्हें और प्यारा हो गया था। जरासी बदगुमानीपर उनके मज-हबी भाव और भावनाएं उत्तेजित हो जाती थीं। उस समयका शायद ही कोई ऐसा मुसलमान लेखक या साहित्यिक रहा हो जिसने मजहबपर कलम न रगड़ी हो।" बुतपरस्त हिन्दुओंके धार्मिक विद्वेषके प्रति असंतोष और इस्लामी किताबों (कुरान और बाइबिल) पर समान विश्वास होनेके कारण मुसलमानोंकी अंग्रेजोंके साथ बेहतरीन दोस्ती—इन दो बातोंको लेकर

सर सैयद अहमद और उनके समर्थक मैदानमें उतरे थे। मुस्लिम लीगके नेता आज दिन भी सर सैयद अहमदकी नीतिका अनुसरण कर रहे हैं। सर सैयद अहमदने 'दीन' की दुहाई दी और कुछ दूरतक वे सफल भी हुए। इसी 'दीन' के नामपर मुस्लिम लीग आज भी भारतकी एकता और देशकी आजादीको बलिदान करनेपर बेधड़क उतारू हैं। सर सैयद अहमदखांकी कोशिशोंका यही लक्ष्य था कि मुसलमानोंमें भेद-सूचक विलक्षणताएं उत्पन्न की जायँ ताकि उनकी कौमी खुसूसियत लोगोंपर आसानीसे जाहिर होती रहे। हिन्दुस्तानके मुसलमानोंका लिबास भी सर सैयद अहमदकी मेहरबानीसे भिन्न हो गया। इसी नीयतसे मुसलमानोंकी जबानको भी हिन्दुओंकी भाषासे भिन्न रखनेकी धुनमें वे पागल रहा करते थे। सर सैयद अहमद खांकी जीवनीके लेखक मौलाना हालीने लिखा है :—

"उनको यकीन हो गया था कि हिन्दुओंका काम दर हकीकत महज कौमी तास्सुब (विद्वेष) पर मबनी (आवलंबित) है। उन्होंने उर्दू जबानकी मुखालफत (विरोध) पर कभी सकूत (मौन) अख्तियार नहीं किया। यहां तक कि मरते-मरते भी वह इस फर्ज को अदा किये बगैर नहीं रहे।" आज उर्दूवाले अपनी जबानको हिन्दुस्तानी नहीं बल्कि उर्दू ही कहना पसन्द करते हैं। महात्मा गांधीने काफी सोच-समझ और सलाह-मशविरा करनेके बाद हिन्दुस्तानी जबानका आंदोलन उठाया है। राष्ट्रीय एकताके लिये जबानकी एकता भी आवश्यक है। हम सरल भाषाके पक्षपाती हैं। भाषा लोगोंके सुभीते के लिये होती है। उसे सरल-बोध-गम्य और आमफहम होनी चाहिये। हिन्दुस्तानमें हिन्दी बोलनेवालोंका बहुमत है। इसलिये जो जबान ज्यादा लोगोंमें बोली और समझी जाय, जो सरल और बोधगम्य हो उसे ही राष्ट्र-भाषा होनेका गौरव हासिल हो सकता है। हिन्दीमें यह सरलता अपेक्षाकृत

अन्य भाषाओंके ज्यादा मौजूद हैं बशर्ते कि संस्कृतके शब्दोंका प्रयोग ज्यादा न हो। सन् १८७३ में पादरी एथरिंगटनने The Students Grammar of the Hindi Language की भूमिकामें लिखा था:—"चाहे हम उस देशके विस्तारका विचार करें, जहां यह बोली जाती है अथवा जातियोंकी संख्या और महत्त्वका विचार करें जो उसे बोलती हैं, हिन्दी यदि कुछ है तो वह उत्तरी भारतकी भाषा मानी जा सकती है। मुसलमानोंकी भाषा उर्दूके लिये ऐसा ही दावा बहुधा किया जाता है। मुसलमान अपेक्षाकृत थोड़े लोग हैं। यद्यपि उत्तरी भारतके बहुतसे शहरों और बड़े कस्बोंमें शिक्षित हिन्दू भी दूसरी भाषाकी भांति उर्दू बोलते हैं तथापि उसका (उर्दूका) प्राधान्य भारत के किसी भी प्रदेशमें नहीं है, न कभी रहा है और अवस्थाको देखते हुये वह मुसलमानोंके सिवा भारतके किसी समाजकी भाषा नहीं बन सकती!" भारतकी भाषा सम्बन्धी समस्याको सुलझाना बड़ा कठिन है। बंगलावालोंका यह दावा है कि भारतकी राष्ट्रभाषा बंगला ही हो सकती है। उर्दूवाले उर्दू और हिन्दीवाले हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेपर तुले हैं। लिपिका सवाल भी बड़ा टेढ़ा है। हिन्दुस्तानी भाषा रोमन लिपिमें लिखी जाय, यह सुझाव भी लोगोंको पसन्द नहीं। फिर यह सवाल हल हो तो कैसे? हमारी तो राय है कि स्वाभाविक रीतिसे हिन्दी और उर्दूको आगे बढ़ने दिया जाय। काल आप ही निर्णय कर देगा कि देशकी भाषा क्या है? जिस भाषाको देश-के अधिकाधिक लोग आसानीसे बोल, पढ़, लिख और समझ सकेंगे वही राष्ट्रभाषा होगी। उसे कोई रोक नहीं सकेगा। अपनी हुकूमत कायम होनेपर भाषाकी उलझन भी दूर हो जायगी। हां, अल्पसंख्यक जातियोंके कौमी हकोंको सुरक्षित रखनेके साथ-साथ प्रान्तीय और मजहबी भाषाओंको भी संरक्षण मिलना चाहिये। राष्ट्रभाषाके नामपर किसी दूसरी भाषाका गला नहीं

घोंटा जा सकता। किन्तु राष्ट्र भाषा तो वही होगी जिसमें राष्ट्र भाषा होनेका स्वाभाविक गुण मौजूद होगा। भाषाका क्षेत्र संस्कृतिके क्षेत्रसे विशाल होता है। हिन्दुस्तानकी भाषाओंमें उर्दूका भी स्थान है। वह रहेगा और रहना चाहिये। पर उसे राष्ट्रभाषा बनानेका आन्दोलन और प्रचार करनेसे विशेष लाभ न होगा। भाषा स्वयं अपने गुणोंके कारण अपना स्थान प्राप्त कर लेती है। इसलिये हिन्दीमें जो गुण है उससे वह राष्ट्रभाषाका स्थान ग्रहण कर चुकी है। उर्दू भी उसी हिन्दीका एक अंग है। भाषाकी कठिनाइयोंको दूर करनेके लिये मुसलमानोंको हिन्दी और हिन्दुओंको उर्दू सीखनी चाहिये। इससे हम एक दूसरेके ज्यादा करीब आ सकेंगे। दिल्लीमें 'अंजुमनए-तरक्की-ए-उर्दू , की तरफसे जो उर्दू-सम्मेलन हुआ था उसके लिये अपना सन्देश देते हुए पं० जवाहरलाल नेहरूने लिखा था:—"मेरी रायमें उर्दू और हिन्दी, दोनोंको एक दूसरेके निकट आनेकी कोशिश करनी चाहिये, ताकि उनसे वह जबर्दस्त जबान तैयार हो सके, जिसकी लिपियां दो हों।" सर तेजबहादुर सप्रूने भी इस सम्मेलनको अपना एक सन्देश भेजा था जिसमें आपने कहा था—"एक तरफ हिन्दू लोग उर्दूमें आये फारसी और अरबीके शब्दोंको निकालनेकी कोशिश कर रहे हैं तो दूसरी तरफ मुसलमान लोग आसानसे आसान हिन्दीके लफ्जोंको निकालकर मुश्किलसे मुश्किल फारसी और अरबीके लफ्ज घुसेड़ रहे हैं। किसीके मजहबी ख्यालोंका साहित्यसे कोई सरोकार नहीं होना चाहिये।" हिन्दुओंमें उर्दू जाननेवालों और भली भांति उर्दू पढ़ने-लिखनेवालोंकी जितनी तादाद निकलेगी उतनी मुसलमानोंमें हिन्दी जाननेवालोंकी नहीं। आवश्यकता तो यह है कि भाषाका सवाल साम्प्रदायिक झगड़ेका रूप धारण न करे।

एक और उलझन हमारी परेशानियोंका कारण हो रही है। वह सभ्यता और संस्कृतिकी उलझन है। 'कल्चर' और 'सिविलीजेशन' के नामपर दीन

और धर्मके जीने तथा मरनेकी दुहाइयां दी जा रही हैं। हिन्दुओंको इस्लामी संस्कृतिसे और मुसलमानोंको हिन्दुओंकी वैदिक संस्कृतिसे खतरा नजर आ रहा है। लेकिन इन दोनों संस्कृतियोंपर यूरोपीय संस्कृतिका जो खतरा मौजूद है उस ओर किसीकी निगाह नहीं जाती। महात्मा गांधीके शब्दोंमें—'भारतके इतिहासमें अंग्रेजी शासनको जैसी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विजय प्राप्त हुई है ऐसी और किसी कालमें किसी दूसरी सत्ताको नहीं प्राप्त हुई।' भारतवर्षमें सर्वप्रथम अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षाका प्रचार करनेवाले लार्ड मेकाले-ने जो स्वप्न देखा था वह सत्य निकला। लार्ड मेकालेने इस बुनियादपर अंग्रेजी शिक्षाकी नींव डाली थी ताकि इस देशमें अंग्रेजी पढ़-लिखकर ऐसे लोग तैयार हों जो रक्त और रंगसे तो भारतीय जान पड़ें लेकिन उनका स्वभाव, उनकी रुचि, उनका लिबास, उनका दिल, उनका दिमाग और उनकी चाल-ढाल बिलकुल अंग्रेजी जैसी हो। आज हिन्दुओं और मुसलमानोंपर, सिखों और पार्सियोंपर अंग्रेजी तालीम और ईसाई संस्कृतिका समान प्रभाव दिखायी दे रहा है। हम अव्वल दर्जेके नकलची और फिरंगी हो गये हैं। इससे मुक्ति पानेका उपाय न तो हिन्दू नेता कर रहे हैं और न मुसलमान नेता। हम अपनी भारतीयता, अपना हिन्दुस्तानीपन खोते जा रहे हैं—बहुत दूरतक खो चुके हैं। लेकिन भारतीय संस्कृति कभी मर नहीं सकती। उसे अमरत्वका वरदान हासिल है। थोड़े समयकेलिये वह भले ही दब जाय, अन्धकारमें पड़-कर आंखोंसे ओझल हो जाय। मगर जड़मूलसे उसका नाश नहीं हो सकता। यूनान, रोम, सीरिया, फारस, बेबीलोन और मेक्सिकोकी सभ्यताएं उठीं और मिट गयीं। मगर हिन्दुस्तानकी सभ्यता अभी बनी हुई है। भारतीय सभ्यता-के चिरजीवी बने रहनेका गुप्त रहस्य यही है कि इसके सम्पर्कमें आनेवाली दूसरी सभ्यताके अच्छे गुणोंको ग्रहण इसमें करनेकी महान् क्षमता विद्यमान है।

साथ ही इसमें सार्वभौमिकता भी है और जज्ब करनेकी ताकत भी। यह अपने मूलपर कायम रहकर दूसरोंकी अच्छाइयोंको हजम करती रहती हैं। इसमें उदारता और कट्टरता, दोनोंका समन्वय है। इसीलिये तो महाकवि इकबालने बड़ी मस्तीके साथ झूम-झूमकर गाया है :—

"यूनान, मिस्र, रोमां, सब मिट गये जहांसे ;
लेकिन अभी है बाकी नामोंनिशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी ;
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहां हमारा।"

× × ×

जो मुसलमान नेता यह कहते फिरते हैं कि हिन्दुओंसे मुसलमानोंकी सभ्यता और संस्कृतिपर खतरा उपस्थित है उनसे मैं पूछता हूं कि अगर अभीतक मुस्लिम सभ्यताका बाल-बांका नहीं हुआ तो अब उसपर खतरा उपस्थित होना कैसे संभव हुआ ? हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंको आये नौ सौ वर्षके करीब हो गये। आज उनकी संख्या भी नौ करोड़ है। जब यहां मुट्ठीभर मुसलमान थे तब उनकी सभ्यता एवं संस्कृति नष्ट नहीं हुई तो आज नौ करोड़ मुसलमानोंके रहते वह कैसे नष्ट हो जायगी ? सभ्यता और संस्कृतिका यह पचड़ा भी पूंजीपतियोंके एजेण्ट इन साम्प्रदायिक नेताओंकी एक बहानेबाजी है।

इसी किस्मके और भी अनेक सवाल हैं जो हमारी प्रगतिमें बाधक हो रहे हैं। हमारे देशका ग्राम्य-उद्योग खतम होता जा रहा है। उसे हमें जिन्दा रखना है। कारखानों और मिलोंकी दैत्याकार मशीनें हमारे देशकी छोटी-छोटी देहाती दस्तकारियोंको खतम करती जा रही हैं। इसकी गहरी चोट हिन्दुओं और मुसलमानोंपर समानरूपसे पड़ रही है। अपने देशके

ग्रामोद्योगको पुनर्जीवित करनेके साथ ही वैज्ञानिक आविष्कारोंके इस मशीन-युगकी औद्योगिक प्रतिद्वन्दितासे भी हम भाग नहीं सकते। हमें अपनी भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति भी करनी होगी और यह पूर्ति स्वावलम्बी बनके करनी होगी। हम परावलम्बी बने रहकर अपनी जरूरतोंके लिये दूसरे देशोंका मुंह नहीं ताक सकते। हमें अपने उस देशका औद्योगिक विकास अवश्य करना है, जिस देशकी बाबत इङ्गलैण्डके एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पिटने कहा था कि—"Not a nail should be manufactured there (India)!" यानी—'हिन्दुस्तानमें एक कील भी नहीं बनानी चाहिये।' भारतके कच्चे मालका शोषण करना ही ब्रिटेनकी परम्परागत उपनिवेशिक नीति रही है। इस देशके औद्योगीकरणकी चेष्टा ब्रिटेनने कभी भी नहीं की। जो थोड़ी बहुत चेष्टा इस दिशामें हुई भी है उसमें ब्रिटेनकी ओरसे सदैव कठिनाइयां पेश की गयी हैं। इस काममें हमें कभी कोई सरकारी सरजीह नहीं मिली। ब्रिटिश टापूके भीमकाय कारखानोंका पेट सदा भारतसे भरा गया है और ब्रिटिश पूंजीकी रक्षाके लिये हमारे राष्ट्रीय उद्योगका गला दबोचा गया है। हमेशा ब्रिटिश सरमायादारोंके स्वार्थोंकी रक्षा हुई है और भारतीय हितोंकी उपेक्षा की गयी है। ओटावा-पैक्ट इसका एक जीता-जागता उदाहरण है। आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था मानव समाजके लिये सुख और शांति नहीं ला सकती। आजकी पूंजीवादी व्यवस्था और पुराने जमानेकी सामंतशाही व्यवस्थामें थोड़ा ही अन्तर है। ये दोनों व्यवस्थाएं मानवताके लिये अभि-शापस्वरूप रही हैं और रहेंगी। मानव-जीवनके आर्थिक विकासके लिये पूंजीवाद असफल सिद्ध हुआ है। हमें समाजवादी व्यवस्था ज्यादा पसन्द है जो पूंजीवादी व्यवस्थाकी प्रतिक्रियास्वरूप पैदा हुई है। इसमें अधिक आदमियोंका अधिक सुख सन्निहित है। अगर हम महात्मा गांधीके अहिंसा

और चर्खेके प्रयोग और उसके आर्थिक पहलूको ठीक-ठीक समझने लगें तो इसमें मानवताके सुखमय भविष्यका बीज मौजूद है।*

* करांची कांग्रेसमें, जो १९३१ ई० के मार्च महीनेमें हुई थी, साम्य-वादी आदर्शको मद्देनजर रखकर आर्थिक परिवर्तन और मौलिक अधिकारों, के सम्बन्धमें एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया गया था जिसका मौलिक अधिकार और 'कर्तव्य' विषयक अंश निम्नलिखित है:—

(१) भारतके प्रत्येक नागरिकको प्रत्येक विषयमें, जो कि कानून और सदाचारके खिलाफ न हो, अपनी स्वतन्त्र राय प्रकट करने, स्वतन्त्र संस्थायें और संघ बनाने और बिना हथियारके शान्तिपूर्वक एकत्र होनेका अधिकार है।

(२) भारतके प्रत्येक नागरिकको अन्तरात्माका अनुसरण करने और सार्वजनिक शान्ति एवं सदाचारोंमें बाधक न होनेवाले धार्मिक विश्वास और आचरणकी स्वतन्त्रता है।

(३) अल्पसंख्यक जातियों और भिन्न भाषा-भाषी वर्गकी संस्कृति, भाषा एवं लिपि की रक्षा की जायगी।

(४) भारतके सब नागरिक कानूनकी दृष्टिमें बिना किसी धर्म, जाति विश्वास अथवा लिंग-भेदके समान हैं।

(५) सरकारी नौकरियोंके, अधिकार तथा सम्मानके ओहदोंमें और किसी भी व्यापार या धन्धेके करनेमें किसी भी नागरिक नर-नारीको धर्म, जाति, विश्वास अथवा लिंग-भेदके कारण अयोग्य नहीं ठहराया जायगा।

(६) सरकारी अथवा सार्वजनिक खर्चसे बने अथवा नागरिकों-द्वारा सार्वजनिक उपयोगके लिये समर्पित कुओं, सड़कों, पाठशालाओं और सार्व-जनिक आवागमनके स्थानोंमें सब नागरिकोंके समान अधिकार और कर्तव्य हैं।

(७) हथियार रखनेके सम्बन्धमें बनाये गये नियम और मर्यादाके अनुसार प्रत्येक नागरिकको हथियार रखने और धारण करनेका अधिकार है।

१२

आजादीकी राह पर

"Freedom is in Peril,
Defend it with all your Might !"

—Jawaharlal Nehru.

[आजादी खतरेमें है, अपनी पूरी ताकतसे इसकी रक्षा करो ।]

—जवाहरलाल नेहरू

---

(८) कानूनी आधारके बिना किसी तरह किसी भी मनुष्यकी स्वतन्त्रता न छीनी जायगी और न किसीके घर और जायदादमें प्रवेश और कुर्की या जब्ती की जायगी ।

(९) सरकार सब धर्मोंके प्रति तटस्थ रहेगी ।

(१०) बालिग उम्रके तमाम मनुष्योंको मताधिकार रहेगा ।

(११) राज्य सबके लिये मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षाकी व्यवस्था करेगा ।

जिस देशकी आत्मा जीवित रहती है वह देश गुलाम नही होता। शासक जब तक शासितकी आत्माको—उसकी रूहानी ताकतको न कुचल डाले तबतक उसे मन चाहा शासन करनेकी स्वच्छन्दता नही मिल सकती। राजनीतिक और आर्थिक पराधीनतासे देशकी आत्मा सो जाती है किन्तु आत्म-बोध होते ही उसमें जागरण पैदा हो जाता है और एक ठोकर लगते ही उसकी खुमारी दूर हो जाती है। रोमनोंने यूनानियोंको तलवारके बल पर जीत अवश्य लिया था। मगर यूनानकी आत्मा भरी नही। यही वजह थी कि शासित होकर भी यूनानियोंने अपने रोमन-शासकों पर शासन किया था। तभी तो इतिहासकार को लिखना पड़ा कि: 'विजितोंने विजेताओं पर विजय पाई' (Conquered Conquered the Conqueror.) यही हालत हिन्दुस्तानकी है। जितने बाहरी

---

(१२) सरकार किसीको खिताब न देगी।

(१३) मौतकी सजा उठा दी जायगी।

(१४) भारतका प्रत्येक नागरिक भारत भरमें भ्रमण करने, उसके किसी भागमें ठहरने या बसने, जायदाद खरीदने और कोई भी व्यापार या धन्धा करनेमें स्वतन्त्र होगा और कानूनी कार्रवाई तथा रक्षाके विषयमें, उसके साथ समानताका व्यवहार होगा।

इस प्रस्तावको पास करते समय यह ऐलान पहले ही किया गया है कि कांग्रेस जिस प्रकारके स्वराज्यकी कल्पना करती है उसका जनताके लिये क्या अर्थ होगा—इसे वह ठीक-ठीक जान जाय इसलिये यह आवश्यक है कि कांग्रेस अपनी स्थिति इस प्रकारसे प्रकट करदे जिसे जनता आसानीसे समझ कर सके। कांग्रेसने देशके सभी मजहबों, फिरकों और वर्गोंके सम्बन्धमें अपनी स्थिति बिलकुल साफ कर दी है फिर भी कांग्रेसपर अगर हिन्दू-राज्य कायम या मुसलमानोंसे मिलकर हिन्दुओंके हितोंका घात करनेका झूठा अभियोग लगाया जाय तो यह दुराग्रहके सिवा और कुछ नहीं है।

हमले हिन्दुस्तान पर हुए इतने हमले शायद दुनियाके और किसी दूसरे देशपर न हुए होंगे। किन्तु विजित हिन्दुस्तान हमेशा अपने विजेताओं पर विजय पाता रहा। इसकी आत्मा कभी मरी नहीं,इसपर कोई रूहानी हुकूमत नहीं कर सका। जो भी बाहरी आक्रमणकारी इस देशमें आये, वे या तो इस देशके होकर रहे या लूट-पाट कर चले गये। हिन्दुस्तान वह मुल्क है जो मौतके सायेमें रहकर भी मौत पर छाया रहता है। भारत हमेशा चिरजाग्रत रहा है। और शाश्वत जागरण ही तो स्वाधीनताका प्रधानतम मूल्य है। जर्मनीका हिटलर भले ही सारे यूरोप पर अपने आतंक और फौजी बलके जरिये विजय पाले, किन्तु वह इन देशोंके लोगोंकी आत्मा पर विजय नहीं पा सकता। उसकी विजय शीघ्र ही पराजयमें बदल जायगी।

भारत जब बेखबर सो रहा था तो उसपर अचानक हमला हुआ। थकावट से चूर और बुढ़ापेसे लाचार होकर हिन्दुस्तान अलसाया हुआ था। वह सब कुछ कर चुका था, सब कुछ पा चुका था। उसकी कोई तमन्ना अधूरी नहीं रह गई थी, कोई साधना बाकी न थी। तवारीखके हजारों लाखों पन्नों पर उसके हाथकी मुहर थे। दुनियाकी दूसरी जातियां उसे पढ़ और समझ रही थीं। वीरता और विद्या, व्यापार और वैराग्य, इल्म व हुनरके बागमें उसके हाथका जो कुछ बचा था और उसमेंसे जागती जातियोंको जो कुछ मिल जाता था उससे वे निहाल हो जाती थीं, मालामाल हो जाती थीं। घरमें वैभव, सुख और शान्तिका मेह बरस रहा था। अभ्युदय और निश्रेयस इकट्ठे होकर घरकी रखा रहे थे। रत्न-दीप जगमगा रहे थे। बूढ़ा भारत थकावटकी नींदमें बेहोश पड़ा था। सुनहला सवेरा आया और गया। जातियां जागीं और उठीं। दुर्धर्ष, क्षोभ हुआ। हाहाकार मचा। तोपोंके भैरवनाद हुए। तूफान और बवंडर आया। मगर बूढ़े भारतकी नींद न टूटी। मनुष्य घोड़ोंकी तरह दौड़े, भेड़ोंकी

तरह कटे और गधोंकी तरह पिसे। चारों ओर काम, क्रोध, होड़, बर्बादी, ईर्षा, कलह, स्वार्थ और पाखण्ड भर गया। सारी सम्पदा लुट गयी। असूर्य-पश्या महिलाओंकी असमत पर डाके पड़े। वे सार्वजनिक हो गयीं। अबोध बालिकाओंने वैधव्यका वेश धारण किया और समाजके अग्निकुण्डमें जल-जल कर उस वेशको निभाया। और जब बूढ़े भारतकी नींद खुली तो उसने देखा दुनियां बहुत बदल गयी है। पड़े ही पड़े नजरके कोरसे नजरके छोर तक उसने देखा, सब कुछ नष्ट हो चुका है। वह अपने घरमें ही अपने घरका मालिक न था। उसका सब कुछ लुट चुका था। उसकी सारी आजादी छीन ली गयी थी और उसका दुबला-पतला बदन फौलादी जंजीरोंमें कसा पड़ा था। वह यह सह न सका। उसकी आत्मा जीवित थी। उसने अपने पुराने अभ्यास की एक गर्जना की। उसने जोश और तैशमें आकर एक झटका दिया; बल लगाया, क्रोध किया। परन्तु पुराना पुरुषार्थ न था। वह दिल मसोसकर रह गया। उसकी सुर्ख आंखोंसे चिनगारियां निकल रही थीं। उसने जागरणकी करवट ली और कर्तव्य पथ पर अग्रसर हुआ। आज गांधीके नेतृत्वमें वह आगे बढ़ रहा है। जवाहरका जौहर उसके साथ है। आज गांधी आध्यात्मिक भारतका आध्यात्मिक सिपहसालार है। गांधी! वह सीधा-सादा मुट्ठीभर हड्डियों का आदमी धधकता हुआ ज्वालामुखी है। वह शान्तिका पुजारी और क्रान्तिका कर्णधार है। वह धर्म गुरु भी है और राजनीतिका निपुण पण्डित भी। वह सेवक है, सैनिक है और सेनानी भी है। उसने मुल्ककी सोई हुई रूहको इन्किलाबके जरिये जगाकर ताजिन्दगी फिर न सोनेका अक्षय अमरत्व भर दिया है। आज हजारों लाखों हिन्दुस्तानी, जिनमें वतनपरस्ती और आजादी के जज़्बात हैं, उसके इशारे पर नाच रहे हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिख और पारसी उसकी आवाज़को अपने दिलकी आवाज़ समझते हैं। मुल्ककी बेहद

बर्बादी, बेकसी, बेबसी और गरीबी देखकर उसकी आत्मामें जो धड़कन पैदा होती है वह करोड़ों भारतीयोंके कानोंमें सुनाई पड़ती है—करोड़ों भारतीयोंके दिलोंमें धड़कन पैदा कर देती है। वह एक आश्चर्यजनक सत्य है। वह मुश्किल और आसान दोनों है। वह सरल और सत्य होते हुए भी कठोर और रहस्यपूर्ण है। उसे समझना कठिन है। लेकिन एक बार समझ जाने पर उसके खिलाफ जाना और भी कठिन है। वह इन्सानियतकी जीती जागती तस्वीर है। मानवता उसमें केन्द्रित है। वह दुनियाके लिये एक पहेली है मगर सिर्फ हिन्दुस्तानका ही नहीं बल्कि सारी दुनियाका वह रहनुमा है। काश, दुनिया उसे समझ पाती! भूख-प्यासकी वेदना तथा रक्त-शोषणकी पीड़ाओंसे आज हमारी आवाज कमजोर पड़ गयी है। हम अपने जन्म सिद्ध अधिकारको खो चुके हैं। आज इस घोर अन्धकारमें हम अपनी मन्द आंखोंसे उसके दिव्य तेजको देख रहे हैं और उसकी रोशनीमें अपना रास्ता तै कर रहे हैं। वह चालीस करोड़ मूक आत्माओंकी मुखरित वाणी है। भारतकी अन्धकारमयी काली कसौटीपर वह बिजलीकी प्रखर धाराकी तरह दिव्य और साफ दिखायी पड़ रहा है। हमारी इस तारीकीमें वह हमें रोशनीकी तरफ खींच, बुला, बढ़ा रहा है। वह हमारा दीपक, मशाल या कन्डील ही नहीं बल्कि हमारा चांद और सूर्य भी है। उसके विकट-विद्रोहमें हमारी आत्मा खेल रही है।

× × ×

मौजूदा हिन्दुस्तान अपनी मासूम हसरतों और मचली तमन्नाओंको लेकर आजादीकी राहका राही है। हम आजाद होनेके लिये तिलमिला रहे हैं। हम मनुके इस वाक्यको समझ गये हैं कि—'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्!' पराधीनता अब हमें असह्य हो गयी है। यह गुलामी नाकाबिले बर्दाश्त हो गयी है और एक गुलाम मुल्कको इतना समझ लेना ही काफी है।

फिर तो वह आजाद होकर रहेगा। आजादी कौन नहीं चाहता। इसे कौन नापसन्द करता है। यह हो सकता है कि कुछ लोग किसी तरहकी गलतफहमीमें पड़कर और गुमराह होकर आजादीकी मुखालफियत करें। मगर गलतफहमीके दूर होते ही वे अपनी गलतियोंको समझ जायंगे। हिन्दुस्तान जैसे बड़े मुल्कमें, जो अपनी विभिन्नताओंके लिये मशहूर हो, अगर कुछ लोग ऐसे हैं जो हुकूमतकी वफादारी और किसी किस्मकी खुदगर्जीके फन्देमें पड़कर आजादीकी राहमें रोड़े अटकाते हैं तो कोई अचरजकी बात नहीं है। दुनियाका वह कौन ऐसा मुल्क है जहां इस तरहके लोग न रहे हों। ऐसी हस्तियां हर जगह पायी गयी हैं, जो अपने वतनकी बेहतरी अपनी निजी बेहतरीके लिये कुर्बान करती रही हैं। इन्सान अपनी कमजोरीको छिपानेके लिये कोई न कोई बहाना ढूंढ़ता ही है। यह उसका स्वभाव है। आज भी ऐसे इन्सानोंकी और ऐसे बहानोंकी कमी नहीं है। हम सच्चे दिल और सच्ची नीयतसे मुल्ककी आजादीके लिये, कांग्रेसके नीचे इकट्ठे होकर, कोशिश कर रहे हैं। कुछ लोग हमारी इस कोशिशपर शक करते हैं। हमारी आजादी हासिल करनेकी चेष्टाओं-में किसीको 'इस्लाम पर खतरा' आया दिखायी दे रहा है तो कोई यह कह रहा है कि कांग्रेस 'हिन्दू हितोंका संहार' कर रही है। जनाब जिन्ना साहब पाकिस्तानके पीछे पागल हो रहे हैं तो वीर सावरकर साहब 'हिन्दू-राज्य' की नींव डालनेपर तुले हुए हैं। गरज यह कि हमपर तरह तरहके निराधार आक्षेप किये जा रहे हैं, झूठे इल्जाम लगाये जा रहे हैं। लेकिन हम इन सारे अभियोगों और आक्षेपोंको सन्देही दिमागकी सूझ समझते हैं। अविश्वासके वातावरणमें सच्चाईका गला घुटता है। हमारी नेकनीयतीके बावजूद भी अगर हम पर शक किया जाता है तो हमें उसकी परवाह नहीं। चमकदार आफताबको आसमानके काले बादल थोड़े समयके लिये आंखोंसे ओझल कर

सकते हैं, दुनियांमें रोशनीकी जगह अन्धेरा पैदा कर सकते हैं, मगर आफताब बादलोंके काले पर्देको चीरकर अपना जलवा दिखाये बिना नहीं रहता। लेकिन नमगादड़ोंको सूर्य कभी दिखायी ही न दे तो इसका क्या इलाज है।

हिन्दुस्तानकी फूट और यहांके साम्प्रदायिक वैमनस्यको देखकर इंगलैण्डके राजनीतिज्ञ फरमाते हैं कि हिन्दुस्तान अभी आजादी पाने योग्य नहीं है। वे अपने आपको हिन्दुस्तानका ठेकेदार समझते हैं। उनका दावा है कि यदि हिन्दुस्तानमें अंग्रेजी सल्तनत नहीं रहेगी तो हिन्दुस्तानवाले आपसमें लड़कर मर जायंगे और पीछेसे कोई दूसरी ताकत इस देशको भेड़ियेकी तरह हड़प लेगी। किन्तु, यह तो एक बहाना है—बड़ी हलकी और ओछी दलील है। जिस देशके लोग अपनी आजादीके लिये ब्रिटेन जैसी प्रबल ताकतसे लड़-झगड़ सकते हैं उस देशके लोग दूसरोंसे भी अपनी रक्षा कर सकते हैं। हमारे आपसी झगड़े तो ब्रिटेनकी देन हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवादने हमें अपनी मौजूदगीका यह 'बरदान' दिया है। आजाद होते ही ये सारे झगड़े भी दूर हो जायंगे। सी० ई० एम० जोड़ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय-ख्यातिके विद्वानका कथन है कि—"यह कह कर आजादी देनेसे इन्कार करना कि उसका दुरुपयोग किया जायगा दरअसल आजादीके खिलाफ बड़ी लचर दलील है।" ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंका काम भारतवासियोंको आपसमें बुलबुलकी तरह लड़ाकर दूरसे तमाशा देखना रहा है। हमारी फूटसे हमारे आकाओंने हमेशा फायदा उठाया है और अब भी उठा रहे हैं। हमें एकताका उपदेश भी देते हैं और एकताके बुनियादी उसूलोंपर कुठाराघात भी करते हैं। वे हमें 'दुआ जीनेकी देते हैं, दवा मरनेकी करते हैं।' १२ दिसम्बर १९४० को लन्दनकी एक दावतमें तकरीर करते हुऐ भारत मन्त्री मि० एमरीने हिन्दुस्तानके लिये एक 'नया नारा' ईजाद किया है। उनका यह नया नारा है—'पहले भारत!'

उन्होंने फरमाया है कि—"भारतसे मेरा अभिप्राय है समग्र भारत,भारत जैसा प्रकृति और इतिहासने उसे बनाया है, भारत अपनी अनन्त विचित्रताओं और प्रच्छन्न एकताके साथ,भारत जैसा आज है और जैसा हम उसे आनेवाले वर्षोंमें देखना चाहते हैं।" मि० एमरीके नारेमें हम हिन्दुस्तानियोंके लिये कोई नवीनता नहीं है। कांग्रेसने अखण्ड हिन्दुस्तानका नारा बहुत पहले बुलन्द किया है। भारत वासियोंके लिये, भारतके देश-भक्तोंके लिये तो भारत ही पहले, भारत ही मध्यमें और भारत ही अन्त में अर्थात् सदा, सब समय और सब अवस्थाओंमें भारत ही भारत नजर आता है। लेकिन असलियत तो यह है कि हमारे शासक ही हमारी अखण्डता बरदाश्त नहीं कर सकते। हमारी एकताके मार्गमें बाधाएं उपस्थित करते हैं। वे हिन्दू मुसलमानोंकी फूट का, देशी नरेशोंके सन्देहका और अल्पसंख्यक जातियोंके अविश्वासका जिक्र करते हैं और फिर इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि भारत स्वतन्त्रता पानेके योग्य नहीं है। हिन्दुस्तानके जर्रे-जर्रेकी जानकारी रखनेवाले लाला लाजपतराय ने लार्ड बर्कनहेड को जोशीला जवाब देते हुए कहा था कि:—"हिन्दुस्तानमें हमारे साम्प्रदायिक विभेदोंकी जिम्मेदारी ब्रिटिश हुकूमत पर है।" स्वर्गीय सी० एफ० एण्डरूजने भी 'दी ट्रू इण्डिया' नामक अपनी पुस्तकमें यही राय जाहिर की है। भारतके मजहब, भारतकी जबान और भारतके जजबातोंकी उन्हें जो जानकारी थी वह शायद ही किसी अंग्रेजको हासिल हो। भारतको उन्होंने अपना घर-सा बना लिया था और भारतमें ही पुनर्जन्म लेनेकी आकांक्षा प्रकट की थी। उनकी यह दृढ़ राय थी कि हिन्दुस्तानके सारे झगड़ोंकी जड़ ब्रिटिश सरकार है। महात्मा गांधीकी ईमानदारी पर शक करना सच्चाईको और साथ ही अपनी आत्माको भी धोखा देना है। गांधीजी हर बातको और हर बातके हर पहलूको बड़े साफ दिमागसे सोचते और साफ नजरसे देखते हैं।

वे अपनी निजी कमजोरियोंका भी सरेआम ऐलान करनेसे नहीं हिचकते। गांधीजीने 'यंग इण्डिया' में लिखा था कि:—"It is the certain belief of almost every Indian that they, the British Government, are principally responsible for most of our quarrels" यानी—'प्रायः प्रत्येक भारतीयका यह दृढ़ विश्वास है कि हमारे अधिकांश झगड़ोंके लिये मुख्यतः ब्रिटिश सरकार ही जिम्मेदार है।' इस तरहके और भी अनेक देशी एवं विदेशी नेताओं एवं विचारकोंकी रायोंका सबूत पेश किया जा सकता है। इस सच्ची कैफियतको ब्रिटेनके राजनीतिज्ञ चाहे मंजूर करें; चाहे न करें। लेकिन अब ज्यादा दिनों तक वे हमें मुगालतेमें नहीं रख सकते। हिन्दुस्तानियोंको आश्वासन देना, वादा करना, वादेको पूरा करनेमें विलम्ब करना, स्कीम बनाना, स्कीमको मुल्तवी रखना और फिर अन्तमें पहुंचकर अपनी जिद्द पर ही अड़े रहना ब्रिटिश राजनेताओंका काम रहा है। अब उनके वादों, प्रस्तावों और प्रतिज्ञाओंमें हमारा कतई विश्वास नहीं रह गया है। जबानसे कहिये तो हम लाख बार उन्हें भला कह दें, लेकिन अपने दिलको क्या करें जिसे करार नहीं होता।

हमें सच्चाइयोंसे भी मुंह मोड़ना नहीं है। अपने वर्तमानपर विचार करके ही हम भविष्यका निर्माण करनेके लिये कदम आगे बढ़ा सकते हैं। आज हिन्दुस्तान मजहबी फूट और फिरकेबन्दियोंका शिकार हो रहा है। अवस्था रोजमर्रा बदसे बदतर होती जा रही है। हमें जो तालीम मिलती है, वह गन्दी, बेअसर, बेअमल और बेकार है। पढ़-लिखकर हमें बेकारी और फाकेमस्तीकी जिन्दगी बितानी पड़ती है। हम छोटी-छोटी नौकरियोंपर जान देते हैं, थोड़ेसे फायदेके लिये अपने दिल और दिमागको बेच देते हैं। हमें अपनी इज्जत और हैसियतका इल्म नहीं रहता। चांदीके चन्द टुकड़ोंपर हम अपनी इन्सा-

नियत कुर्बान कर देते हैं। देशका कोई फिरका, कोई वर्ग खुशहाल नजर नहीं आता। जिन्दगीका स्टैण्डर्ड बुरी तरह गिर चुका है। हमारा इल्म व हुनर, रोजगार और सौदागरी, पूंजी और मेहनत सब कुछ बर्बाद हो गयी है। देहातकी दस्तकारियाँ खतम हो गयी हैं। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है। हम जिन्दगी और मौतके जद्दोजहदसे होकर गुजर रहे हैं। प्रतिक्रियागामी ताकतें हमारा गला घोंट रही हैं। लेकिन हम बेखबर होकर आपसमें ही लफ्जों और स्कीमों पर लड़ रहे हैं। देश रोटियोंके लिये, कपड़ेके लिये, रोजी और मजदूरीके लिये, रहनेके लिये, शिक्षा और तन्दुरुस्तीके लिये चीख रहा है। मुल्क नाउम्मीदियोंके अंधेरेमें भटक रहा है और हम फार्मूलों पर बहस कर रहे हैं। दुनियाकी हालत तूफानी रफ्तारके साथ बदल रही है। इस बदलती हुई हालतमें एक नये राजनीतिक और आर्थिक ढांचेकी जरूरत महसूस हो रही है। समाजमें जो साम्य और समता होनी चाहिये वह इस समय नहीं है और उसके अभावमें यह स्वाभाविक है कि चारों तरफ तन-ज्जुली और तबाही नजर आये। जिस तेजी और मुस्तैदीके साथ हमें अपनी समस्याओं पर विचार करना चाहिये वह हम नहीं कर रहे हैं। भारतकी जनता कष्ट और पीड़ासे बेचैन है। वह अपनी तकलीफोंके बोझसे किसी तरह छुटकारा पाना चाहती है। यही हमारी मुख्य समस्या है। दूसरे सवाल इसके बाद आते हैं। इस बड़ी समस्याको हल करनेके लिये हमें हिन्दुस्तानको साम्राज्यवादके कठोर बन्धनसे छुटकारा दिलाना होगा। साम्राज्यवादकी जड़ बहुत गहराई तक जमी हुई है। वर्तमान साम्राज्यवाद, पूंजीवादका एक स्वाभाविक परिणाम है। एकको दूसरेसे अलग नहीं किया जा सकता। बीमारी अपना स्थायी घर कर चुकी है। हमारे लिये आज सबसे जरूरी और अहम मसला पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता और लोकतन्त्रात्मक राज्य

कायम करना है। क्योंकि अपनी तमाम बीमारियोंका हमें एक यही इलाज जान पड़ता है; अब हम अपने प्रश्नों और समस्याओंको नजर-अन्दाज नहीं कर सकते। हमारे मुल्ककी घोर गरीबी और करोड़ों आदमियोंकी बेकारी बढ़ते हुए लकवेके मर्जकी तरह हमारे राष्ट्रीय जीवन पर बराबर चोट कर रही है। आज दुनिया दर्दनाक विरोधोंसे भरी हुई है। लेकिन कहीं भी यह विरोध इतनी तीव्र मात्रामें नहीं है जितनी तीव्र मात्रामें हमारे देशमें हैं। एक तरफ हर तरहकी शान और शौकतें, राजावटें और फिजूलखर्चियां पायी जाती हैं। दूसरी तरफ भूखे किसानोंके फूसके झोपड़े खड़े हैं जिनके बच्चे चुल्लू भर दूधके लिये तड़पा करते हैं और जिनकी महिलाएं बीते भर वस्त्रके लिये शर्मसे गर्दन नीचे किये चलती हैं। हमें अपनी लम्बी यात्रामें खतरे और तकलीफको अपना साथी बनाकर आगे बढ़ना है। हम अब्रके मानिन्द गरजते और गाते हुए अपने मकसदकी ओर चल पड़े हैं। अब अपनी इस विकट यात्रामें स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व ही हमारा नारा होना चाहिये। अगर हम अपने उद्देश्यकी ओर एकता और जोशके साथ झंझावातकी तरह अग्रसर होंगे तो बाधाएं हमसे पनाह मांगेंगी, राहके रोड़े हमारी एक ठोकरसे जाकर दूर गिरेंगे, स्वतन्त्रता हमारी चेरी होगी और हिमालयकी बुलंद चोटियों पर पहुंच कर हम अपनी विजय पताका फहरा देंगे। हम दुनियाको और दुनिया हमें सिर ऊंचा करके देखेगी!

शुद्धि-पत्र

[प्रूफ संशोधनमें कतिपय भूलें रह जानेके कारण हमारे पाठकोंको कहीं-कहीं कुछ अवांछनीय अशुद्धियां मिलेंगी। पाठकोंकी सुविधाके लिये प्रस्तुत-पुस्तकके विभिन्न पृष्ठोंकी अशुद्धियोंका शुद्ध रूप दिया जा रहा है। पाठक कृपया इन्हें सुधार कर पढ़ें। —सम्पादक]

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
५	कहा	कह
२१	१९०	१९
२२	वे	न
२४	बने	काम बनाते
,,	खिलाफसे	खिलाफ
२७	स्वयं+	स्वयं इस
२९	अपेक्षा	उपेक्षा
३७	अनुसार+	अनुसार यह शब्द
३८	बड़ा	०
४०	आकर	जाकर
४४	अल्पमतके	अल्पमतकी
,,	देशके	देशसे
४६	घोपणा	घोषणा
५१	यह	कई
५६	प्रतिनिधिमें	प्रतिनिधि
५६	कारमेथियन	कारपेथियन
५७	अजीब गरीब	अजीब-व-गरीब
६४	सरकार	सरकारी

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
६८	जिमत्राण	नियंत्रण
७१	लोकतन्त्र	लोकमत
७२	सुविधाओंके	सुविधाओंकी
७४	रहेंगे	रहें
७८	स्वाधीनता	स्वाधीनता
८२	तवादिला	तबदील
८४	उच्छृंखल	उच्छृङ्खल
८५	सह्य	सह्य
८६	बहालपुर	बहावलपुर
८७	कनाडा	कनाडा
८८	स्थानान्तिरत	स्थानान्तरित
९६	कहूं	वारूंगा
१०६	विश्ववंधुत्व	विश्वबंधुत्वके
,,	घृणा	घृणा
११७	मंह	मुंह
१३६	संघ-योजनायें	संघ-योजनायें
१४०	हाहाकारमें भी	हाहाकारमयी
१४६	वे यदि	वे और
१४७	Thus further for and no further	Thus far no further
१६२	Conquered Conquered the Conqueror	Conquest Conquered the Conqueror
१६२ (नोट)	भ्रमण	भ्रमण
१६३	सुहर थे	सुहर थी
१६५	कन्डील	कन्दील